जुलाई 2025

दादावाणी

Retail Price ₹ 20

'माँ-बाप की सेवा, वह प्रत्यक्ष, नकद है।
भगवान दिखाई नहीं देते, जबकि माँ-बाप तो दिखाई देते हैं।
भूल गए वहाँ से फिर से गिनना शुरू करो।
जो हैं उनकी सेवा करो। जो चले गए, वे चले गए।
लेकिन अभी माँ-बाप हैं, तो आप उनकी सेवा करो।'

दादाश्री के पिताश्री - मूलजीभाई

दादाश्री के मातुश्री - झवेरबहन

सूरत : सत्संग - ज्ञानविधि : ता. 16 से 18 मई 2025

धरमपुर : पूज्यश्री श्रीमद् राजचंद्र मिशन की मुलाकात लेते हुए : ता. 19 मई 2025

वर्ष : 20 अंक : 9
अखंड क्रमांक : 237
जुलाई 2025
पृष्ठ - 28

Editor : Dimple Mehta
© 2025
Dada Bhagwan Foundation
All Rights Reserved.
Printed & Published by
Dimple Mehta on behalf of
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

Owned by
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

Printed at
Amba Multiprint
Opp. H B Kapadiya New High School, At-Chhatral, Tal: Kalol,
Dist. Gandhinagar - 382729

Published at
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

संपर्क सूत्र :
त्रिमंदिर, सीमंधर सिटी,
अहमदाबाद-कलोल हाइ-वे,
पो.ओ.: **अडालज,**
जि.: गांधीनगर-382421.
फोन : 9328661166-77
email: dadavani@dadabhagwan.org
www.dadabhagwan.org
दादावाणी संबंधी शिकायत के लिए:
+91 8155007500

सबस्क्रिप्शन (सदस्यता शुल्क)
5 साल
भारत : 1000 रुपये
वार्षिक
भारत : 200 रुपये
भारत में D.D./M.O.
'महाविदेह फाउन्डेशन' के नाम से संपर्कसूत्र के पते पर भेजें।

दादावाणी

दादाश्री के संस्कार सिंचन में माता-पिता की भूमिका

संपादकीय

इस कलिकाल में ऐसे प्रखर ज्ञानी पुरुष 'दादा भगवान' प्रकट हुए कि जिनके माध्यम से उदय में आए हुए अक्रम विज्ञान द्वारा सामान्य मनुष्य भी आसानी से अध्यात्म को समझ सकते हैं, इतना ही नहीं यथार्थ रूप से आत्मानुभव भी कर सकते हैं। श्री अंबालालभाई पटेल के तौर पर उनका जीवन शुरू हुआ और खुद ज्ञानदशा से ज्ञानी पुरुष होकर 'दादा भगवान' स्वरूप तक पहुँच पाए। ऐसे ज्ञानी का बचपन कैसा रहा होगा, उनके संस्कारी माता-पिता कैसे होंगे कि जिनके द्वारा उनके बाल जीवन का सिंचन हुआ होगा, वह जानने की जिज्ञासा हमें हुए बिना तो रहेगी ही नहीं न!

प्रस्तुत अंक में, परम पूज्य दादा भगवान (दादाश्री) के संस्कारी माता-पिता के साथ हुए कुछ प्रसंगों का संकलन हुआ है, जिनका उनके व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव पड़ा है। उनकी माताश्री का चारित्रबल उत्तम था। इसके अलावा उच्च समझ के साथ हृदय वाली, ऑब्लाइजिंग नेचर, हिम्मत वाली, समता वाली, कोई अपमान करके गया हो उसके बाद वह फिर से आता तो उतने ही प्रेम से बुलाती थीं, ऐसी करुणा वाली, खानदानी जैसे बहुत सारे सदगुण थे!

दादाश्री के पिताश्री राजसी स्वभाव के थे। अंबालालभाई का जन्म हुआ, उस समय ज्योतिषी ने कहा था कि 'आपका यह पुत्र ग़ज़ब का पुरुष होने वाला है। इसके जन्माक्षर (जन्मपत्री) बहुत उच्च हैं, इसलिए इसके संस्कार में कमी मत पड़ने देना। तभी से पिताश्री के हृदय में पुत्र के प्रति गहरी छाप पड़ गई थी। यों पिता कुलवान और ब्रॉड विज़न (विशाल दृष्टि) वाले थे और माता गुणवान थी। दोनों का जीवन प्योरिटी वाला था और वे ही बाल संस्कार अंबालालभाई को मिलें थे।

बचपन से माताश्री उच्च संस्कार देती रहती थीं, 'तू मार खाकर आना, किसी को भी मारकर मत आना', अहिंसा के पाठ सिखाए थे। बोलो, तो ऐसी माँ महावीर बनाती या नहीं? मूलतः खुद संस्कार के बीज लेकर आए थे, परंतु ऐसी माताश्री के संयोग से वे संस्कार प्रकट हुए थे। बा के प्रेम ने उन्हें परदेश नहीं जाने दिया। अंबालाल ने यहाँ रहकर भगवान ढूँढ निकालने की इच्छा का ध्येय आखिर में सिद्ध कर लिया! उनकी माताश्री उनसे कहती थीं कि 'मेरी ज़िंदगी में अगर दर्शन करने लायक कोई है तो सिर्फ तुम ही हो। तुम ही मेरे भगवान हो', ऐसी पहचान उन्हें हो गई थी।

दादाश्री कहते हैं कि 'हमारी मदर बहुत संस्कारी थीं इसलिए उनके द्वारा मेरा संस्कार जाग्रत हुआ। हमारा बचपन से विज्ञानी स्वभाव था, तो हर एक कार्य के बाद उसके परिणाम दिखाई दिए बगैर रहते ही नहीं थे। विज्ञानी अर्थात् अपना सब कुछ दाँव पर लगा देना। सामने वाले को (सही) रास्ते पर ले आना। मूलतः तो मैं अपने सभी संयोग लेकर आया था।' नियम ऐसा है कि अपने जो संयोग हों न वैसा ही वातावरण मिलता है। अतः आखिर में कुदरती अक्रम विज्ञान मिल गया। इससे अनेक अध्यात्म जिज्ञासु लोगों का काम निकल जाए, यही हृदयपूर्वक अभ्यर्थना।

जय सच्चिदानंद

दादाश्री के संस्कार सिंचन में माता-पिता की भूमिका

'दादावाणी' सामायिक में मुद्रित पाठ्य सामग्री मूलतः गुजराती 'दादावाणी' का हिन्दी रूपांतर है। कोष्ठक में दिए गए शब्द या तो अंग्रेज़ी शब्द का अर्थ हैं अथवा शब्द का तात्पर्य स्पष्ट करने हेतु वृद्धित किए गए वाक्यांश है। यहाँ पर 'आत्मा' शब्द को गुजराती और संस्कृत की तरह पुल्लिंग में प्रयोग किया गया है। जहाँ पर भी 'चंदूभाई' नाम का प्रयोग हुआ है, वहाँ पर पाठक खुद को समझें। 'दादावाणी' के इस अंक में अगर आप कोई बात न समझ पाएँ तो प्रत्यक्ष सत्संग में पधारकर समाधान प्राप्त करें। अनुवाद में कोई कमी नज़र आए तो हमें सूचित करने की कृपा करें, ताकि भविष्य में सुधार किया जा सकें। ऐसी क्षतियों के लिए हम आपके क्षमाप्रार्थी है।

'अंबा माँ की भक्ति' से अंबालाल नाम

प्रश्नकर्ता : दादा, आपका मूल नाम क्या है?

दादाश्री : मेरा नाम अंबालाल मूलजीभाई पटेल, गाँव भादरण और अच्छा परिवार। हमारी बा (मदर) झबेर बा। मेरे फादर (पिता), लोग उन्हें 'मूलजी काका' कहते थे।

प्रश्नकर्ता : दादा, आपका नाम कैसे पड़ा?

दादाश्री : मेरी माता जी (झबेर बा) ने मेरे लिए (जन्म से पहले) आठ साल तक घी न खाने का प्रण लिया था और वे निरंतर अंबा माँ की भक्ति करते थे। उस पर से मेरा नाम 'अंबालाल' रखा।

'माँ' गुणवान, 'पिता' कुलवान

प्रश्नकर्ता : आप जो ज्ञानी के रूप में पहचाने गए उससे पहले का आपका पूर्व जीवन यानी कि आपका परिवार, माता-पिता, वहाँ का वातावरण, लालन-पालन, काल उसकी कोई बात कीजिए न!

दादाश्री : हाँ, परिवार का माहौल अच्छा था, संस्कारी माहौल, संस्कारी परिवार।

मेरी मदर तो ऐसी थीं कि ढूँढने पर भी न मिलें, ऐसी थीं। ज़मीन ही अच्छी न हो तो अच्छा पौधा कैसे उग पाएगा? उसी प्रकार इसमें भी माता अच्छी होनी चाहिए। यानी मेरा जन्म तो बहुत मुलायम हार्ट (हृदय) वाली माँ की कोख से हुआ था। हमारी बा जैसी स्त्री मैंने आज तक नहीं देखी। उनके जो विचार थे, उनका जो वर्तन, उनकी दया, करुणा वह मैंने देखा है। इतना तो बहुत ही उच्च प्रकार का था। उसे मैं (बहुत उच्च) जन्म स्थल मानता हूँ, बहुत उच्च जन्म स्थल!

एक व्यक्ति ने डरते-डरते मुझसे पूछा था कि 'आप ऐसे कैसे जन्मे?' तब मैंने कहा, मेरी 'माता' गुणवान थीं और 'पिता' कुलवान थे। कुलवान कैसे होते हैं? ब्रॉड विज़न (विशाल दृष्टि) वाले होते हैं। कुलवान पर दाग़ नहीं लगना चाहिए, कुलवान पर एक भी दाग़ नहीं लगना चाहिए।

यह ग्रेड (कक्षा) मिल ही नहीं सकती है न, प्योरिटी (शुद्धता) के बिना! और फादर-मदर सभी में प्योरिटी थी, अत्यंत प्योरिटी और पूरे दिन किस प्रकार किसी का काम करें सब का यही काम था! उसमें भी मदर तो बहुत ही ऐसे...

हमारी मदर का तो ऐसा था कि हमारे गाँव में कई लोग ऐसा कहते थे कि 'तेरी मदर जैसी मदर किसी ही काल में होंगी'।

बा का चेहरा देखते ही सुखी हो जाता

प्रश्नकर्ता : आपके माता जी झवेर बा के बारे में कुछ बातें कीजिए न!

दादाश्री : मेरी माँ का चेहरा देखते ही, कोई दुःखी व्यक्ति भी सुखी हो जाता, ऐसी थीं हमारी बा। उनके गुणों का क्या वर्णन करूँ?

हमारे गाँव में सात हज़ार लोगों की बस्ती

थी लेकिन मैंने ऐसी मदर नहीं देखी। वह भी फिर निष्पक्षपाती रूप से सोचकर देखा कि वे मेरी मदर हैं इसलिए मुझे ऐसा लग रहा है? अत: और तरीकों से भी जाँचकर देख लिया। फिर से निष्पक्षपाती भाव से जाँच की। लेकिन बहुत अच्छी स्त्री, बहुत सुंदर विचार! आप गाली देकर जाओ और अगर तुरंत ही वापस आओ तो बुलाती थीं। करुणा वाली थीं, बहुत करुणा, ज़बरदस्त करुणा! और ऑब्लाइजिंग नेचर (परोपकारी स्वभाव) निरंतर! अत: अभी भी अपने हिन्दुस्तान में कुछ संस्कार हैं। अपने यहाँ ऐसा है न और कई प्रकार से दिवाला निकल चुका है लेकिन संस्कारों को लेकर दिवालिया नहीं हुए हैं।

झवेर बा का प्रभाव पड़ा दादा पर

झवेर बा तो पर्सनालिटी (विशिष्ट व्यक्तित्व) वाली थीं! वे जब भी हमारे मुहल्ले में से होकर निकलती थीं, हम जिस मुहल्ले में जाते थे न, मैं और मदर दोनों जब सामने से आ रहे होते थे तो हर एक घर में से लोग बाहर निकलकर तुरंत ही बा को जय श्री कृष्ण, जय श्री कृष्ण कहा करते थे। मैं साथ में होता था तो समझ नहीं जाऊँगा कि उनका ऐसा प्रभाव पड़ रहा है उस समय?

हमारे यहाँ से जब बड़ौदा तक जाते थे तब मैं साथ में होता था न, तब पूरे गाँव में सभी लोगों को देखता ही रहता था कि यह (बा की) कैसी पर्सनालिटी है! रात को सात बजे जब बस में से उतरकर जाते थे तब हमारे पास वाला जो मुहल्ला था न, हमें उस मुहल्ले में से होकर जाना पड़ता था घर। तो बा के साथ एक बार वहाँ गया था मैं। तब पास वाले मुहल्ले में पचास घर इस तरफ और पचास घर उस तरफ, इतना बड़ा मुहल्ला था। उस मुहल्ले के बीच में से होकर जाने का रास्ता था, उस मुहल्ले में दाखिल होते ही, वहाँ पर हर एक घर में से लोग बाहर निकल-निकलकर कह रहे थे 'बा आ गईं, बा आ गईं'। हर एक स्त्री खाना बनाते-बनाते 'झवेर बा आ गईं, बा आ गईं, बा आ गईं, बा आईं' करते हुए बाहर दौड़ी आती। छोटा सा मुहल्ला था इसलिए हर कोई घर से बाहर आ जाता था। दोनों तरफ के घरों में भाग दौड़-भाग दौड़ मच गई। इसी को पर्सनालिटी (प्रभावशाली व्यक्तित्व) कहते हैं न! तो पूरे मुहल्ले के लोग ही बाहर आ गए थे। तो क्या हम समझ नहीं सकते कि इन्होंने क्या प्राप्ति की है? समझ जाएँगे या नहीं समझेंगे? क्या प्राप्ति की होगी?

प्रश्नकर्ता : प्रेम प्राप्त किया न!

दादाश्री : एडजस्टमेन्ट, 'हाउ टू एडजस्ट'। क्या वे सभी अच्छी थीं? वे सब लोग जो बाहर निकलकर आए, क्या वे सभी लोग अच्छे थे? अच्छे-बुरे सभी लोग बाहर निकलते थे। बा आ गए, बा आ गए, बा आ गए! तो वह सब हमें देखने मिला या नहीं?

प्रश्नकर्ता : मिला।

दादाश्री : दोनों तरफ के सभी घर। ऐसा ही सब देखा था मैंने। उसी का मुझ पर प्रभाव पड़ा। उनके संस्कार ऐसे थे, इसलिए!

जबरदस्त खानदानी - समता

हमारी मदर को कोई गालियाँ दे फिर भी बा हँसते थे, बहुत समता वाले! बा ने किसी को परेशान किया हो, ऐसा मैंने कभी भी नहीं देखा। लोगों ने बा को परेशान किया होगा लेकिन बा ने उन्हें परेशान नहीं किया।

प्रश्नकर्ता : हमारा उनसे थोड़ा-बहुत परिचय था लेकिन देखा कि ऐसे व्यक्ति अभी तक मैंने नहीं देखे!

दादाश्री : ऐसे व्यक्ति नहीं देखे। देखने को मिलेंगे ही नहीं न, ऐसी समता! ऐसी खानदानी, ज़बरदस्त खानदानी!

माँ के धीरज ने पिताजी को बचाया

प्रश्नकर्ता : और फिर वे धीरज वाले भी थे!

दादाश्री : हाँ! वह तो एक बार ऐसा हुआ कि मेरे पिताजी रात को बाहर सो गए थे। पाँच-सात फुट लंबा साँप निकला था। वह उनके सिर पर चढ़ गया था। तब मेरी बा ने देखा। पूरा साँप शरीर पर से होकर निकल गया। उसके बाद बा ने मेरे पिताजी को उठाया और कहा कि 'आप बिना ओढ़े सो गए थे। पूरा साँप आपके शरीर पर से होकर निकल गया। अब मैंने गरम पानी रख दिया है तो नहा लीजिए'। बा ने यह समता और धीरज नहीं रखा होता तो पिताजी चौंककर जाग जाते। पिताजी को लगता कि मुझे काट लेगा। साँप को लगता कि मुझे मारेंगे। ऐसे में साँप उन्हें काट लेता, लेकिन मेरी बा में कितना धीरज था!

प्रेम से भोजन करवाने में खुद तृप्त हो जाते

हमारी मदर खाना खिलाते समय हमेशा भूखी रहती थीं। तो मैंने कहा, 'क्यों नहीं खाया?' तब वे कहतीं, 'मेरा पेट तो खाना खिलाते समय ही भर गया, खाना खिलाकर ही!' तो क्या ऐसा हो सकता है कि कोई इस तरह से तृप्त हो जाए? लेकिन ऐसा होता था। यदि तुझे भूख लगी हो और फिर मैं खाना खिलाने लगूँ तो मैं खुद ही तृप्त हो जाऊँ, ऐसा हो सकता है क्या? किसी ने ऐसी बात सुनी है कि खाना खिलाने वाले का पेट भर जाता है? मुझे ऐसा अनुभव होता था।

प्रश्नकर्ता : होता है, दादा। जो खाना खिलाता है उसे ऐसा होता ही है, दादाजी।

दादाश्री : वह अच्छा है। उन्हें तो बिल्कुल भी भूख नहीं लगती थी! खाना खिलाने में बहुत आगे! ऐसा प्रेम मैंने देखा था।

प्रश्नकर्ता : प्रेम और सहिष्णुता की मूर्ति!

दादाश्री : कोई दही लेने आता तो इतना सारा दही निकालकर दे देती थीं और ऊपर से मलाई वाला। अपना बुरा दिखेगा', ऐसा करके फ्री दे देते थे और वह भी मलाई वाला। वे लोग पुण्यशाली थे न! नहीं?

तो मुझे मोह सिर्फ बा पर ही था। हाँ, इतने सुंदर गुण थे इसीलिए मोह उत्पन्न हो गया था। प्रेम भरे, पैसे-वैसे कुछ भी नहीं चाहिए थे उन्हें, ऐसी थीं मेरी बा।

प्रश्नकर्ता : मोह सिर्फ बा पर ही?

दादाश्री : हाँ। मुझे तो बचपन में (कम उम्र में), अज्ञान दशा में सिर्फ बा की ही ज़रूरत थी। वे बाहर जाती थीं तो मुझे अपनी साड़ी देकर जाती थीं। उसे हाथ में लेते ही मुझे नींद आ जाती थी।

'मार खाकर आना, मारना मत'

प्रश्नकर्ता : दादा, आपने कहा कि आप शरारती थे, तो क्या किसी को मारा था आपने? किसी बच्चे को मारा था या नहीं बचपन में? तब झवेर बा क्या करते थे?

दादाश्री : हाँ, मारा था। शरारत भी की थी। शरारत नहीं की ऐसा नहीं था! दूसरों को मारा था... अच्छी तरह से मारा था। लेकिन फिर बा ने मना किया कि 'अब मत मारना किसी को'। बा ने मना किया था इसीलिए फिर नहीं किया। मूलतः तो जुनूनी।

बचपन में एक बार एक व्यक्ति को पत्थर से मारकर आया था, छोटे से। तो उसको खून

निकल आया। फिर मैं चुपचाप घर आ गया। लोग मारने न आएँ, इसलिए! झवेर बा को पता चल गया।

प्रश्नकर्ता : आप किसी को मारकर आते थे, तब बा आपको मारते थे क्या?

दादाश्री : समझाते थे। उसके बाद उन्होंने मुझसे कहा कि 'भाई, यह क्या किया? देख, उसे खून निकला। यह तूने क्या किया?' मैंने कहा, 'मारता नहीं तो और क्या करता?' तब उन्होंने कहा, 'वह तो उसकी चाची के पास रहता है, उसकी माँ नहीं है तो उसे कौन पट्टी वगैरह बाँधेगा? और कितना रो रहा होगा बेचारा! उसे कितना दु:ख हो रहा होगा! अब कौन उसकी सेवा करेगा? और मैं तो तेरी मदर हूँ, तेरी सेवा करूँगी। अब से तू मार खाकर आना, लेकिन किसी को पत्थर मारकर और खून बहाकर मत आना। तू पत्थर खाकर आना तो मैं तुझे ठीक कर दूँगी। लेकिन उसे कौन ठीक करेगा, बेचारे को?'

ऐसी मदर महावीर बनाएँ

प्रश्नकर्ता : अभी तो उल्टा ही है सब। अभी तो उल्टा कहते हैं, 'देख लेना, अगर मार खाकर आया तो!'

दादाश्री : पहले से ही उल्टा, आज से नहीं। अभी इस काल की वजह से नहीं हुआ है, वह पहले से उल्टा ही था। ऐसा ही है यह जगत्! इसलिए लोग तो 'अगली बार लकड़ी लेकर जाना' ऐसा कहते हैं। सब दु:खी करने के तरीके! ये माँ जी तो मुझे अच्छा सिखाती थीं, सब कुछ अच्छा सिखाती थीं। मुझे बहुत अच्छा लगता था। बोलो अब, ऐसी माँ महावीर बनाएगी या नहीं बनाएगी? मेरी माँ जी थीं ही ऐसी! बचपन में यह बात हुई थी फिर बड़े होने पर समझदारी बढ़ी तो और ज़्यादा समझ में आया। बाकी, ऐसा सिखाए तो पहले तो अच्छा ही नहीं लगेगा न? लेकिन मुझे अच्छा लगा था। मैंने कहा, 'बा जो कह रही हैं, वह बात सही है। उसकी मदर नहीं है बेचारे की'। इसलिए फिर समझ गया था तुरंत ही। तभी से मारना बंद हो गया।

बा की करुणा से ज्ञान फिट हुआ

प्रश्नकर्ता : दादा, बा ने आपको मारने से मना किया और मारना बंद हो गया, वह कैसे?

दादाश्री : हाँ, हमारी सरलता की तो दाद देनी पड़ेगी! तब छोटा बच्चा था, मोड़ो वैसे मुड़ जाता था। निष्कपटता! लेकिन बा ने करुणा दिखाई कि... 'मैं तो तेरी बा हूँ और मैं तेरी सेवा करूँगी लेकिन उस बिन माँ के बच्चे को मारकर आया तो उसका कौन करेगा अब बेचारे का?'

उसके बाद मैं समझ गया कि यह गलत है। फिर बंद कर दिया। मैंने कहा, 'यह तो मुझसे भूल हो रही है'। काँप उठे थे कि अरेरे! इसका क्या होगा अब? काँप उठे थे हम तो। उसे लगी, उसके बाद मन में बहुत ही पछतावा हुआ था। ऐसा सब कैसे हो गया? बेचारे को खून निकला! उस समय अंदर घबराहट हो गई थी छाती में।

पहले तो खटमल पर बहुत चिढ़

प्रश्नकर्ता : अहिंसा के ऐसे अन्य कोई पाठ जो माँ से सीखे हों, वैसी बातें बताइए न, दादा।

दादाश्री : बचपन से ही बाकी सभी चीज़ों के लिए हमारी चिढ़ चली गई थी लेकिन खटमल पर रह गई थी। झवेर बा और हीरा बा को नींद आ जाती थी। वे नहीं चिढ़ते थे लेकिन मुझे चिढ़ थी। खटमल के प्रति चिढ़ के कारण हमने लोगों को पूरी रात जागते हुए भी देखा था। अरे! और किसी की क्या बात करें? हमारा ही इतना सेन्सिटीव (संवेदनशील) स्वभाव था कि एक खटमल को

भी बिस्तर पर रेंगते हुए देखकर हमने भी पूरी रात जागते हुई बिताई है।

शुरुआत में तो मैं उन्हें खाने नहीं देता था, निकाल देता था और फिर वैष्णव के घर जन्म हुआ था न, तो मार भी देता था। वहाँ पर अहिंसा का इतना अधिक महत्व नहीं था। तो घर में भी ऐसा नहीं सिखाते थे। फिर यह तो बाद में पता चला कि यह सब गलत हुआ है।

खटमल क्या टिफिन लेकर जाते हैं?

बहुत साल पहले की बात है। मैं पच्चीस-छब्बीस साल का था उन दिनों घर में मदर बीमार रहती थीं, उस वजह से घर में खटमल हो गए थे। वे ज़रा ज़्यादा हो गए थे। उससे घर में सभी परेशान हो गए थे। जब व्यक्ति कमज़ोर हो जाता है न बहुत बुढ़ापे में, तब शरीर भी कमज़ोर हो जाता है इसलिए खटमल हो जाते हैं। बा के बिस्तर पर बिछाने की दो नरम रज़ाइयाँ थी, उनमें खटमल हो गए थे। फिर वे मुझे भी काटते थे! मेरा भी नसीब तो होगा न!

मेरी मदर मुझसे छत्तीस साल बड़ी थीं। मदर से मैंने पूछा, कि 'आज तक कभी भी खटमल नहीं हुए थे। इस साल बहुत खटमल हो गए हैं तो क्या वे रात को काटते नहीं हैं? परेशानी नहीं होती?' तब उन्होंने कहा, 'भाई काटते ज़रूर हैं लेकिन उसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है'। मैंने पूछा 'क्यों, ये तो पूरी रात काटते हैं'! तब कहा, 'उनमें यह एक गुण बहुत अच्छा है खटमलों में'। मैंने पूछा 'कौन सा?' तो कहा, ''भाई, वे क्या कोई पोटली लेकर आते हैं? वे खाना खाकर चले जाते हैं। वे कोई पोटली लेकर नहीं आते हैं'।

खटमल तो भिक्षुक हैं। वे कहाँ झोली लेकर आए हैं? जब उन भिक्षुकों का पेट भर जाएगा तो चले जाएँगे। उन्हें घर-वर नहीं बनाने हैं और कल के लिए भी कुछ ले नहीं जाते। वे कोई टिफिन लेकर थोड़े ही आते हैं दूसरों की तरह कि 'हमें कुछ देना न, माई-बाप?' लोग तो टिफिन लेकर जाते हैं जबकि ये टिफिन लेकर नहीं आते। इसलिए मुझे कोई आपत्ति नहीं है,' बा ने कहा।

तो मुझे यह शब्द पसंद आया। मैंने कहा, 'यह बात तो उपकारी है। ये शब्द मुझे काम के लग रहे हैं'। उन्होंने कहा, 'वे पोटली लेकर नहीं आते हैं'। यदि पोटली बाँधकर ले जाते, तो उन्हें रोकना पड़ता कि रुको, क्यों बाँध रहे हो? वे तो खाना खाकर चले जाते हैं। यानी अपने जैसे परिग्रही नहीं है। मुझे हेल्प हुई, उन्होंने इतनी अच्छी बात कही, मुझे अच्छी लगी। मैंने कहा, 'ये कितनी धीरज वाली हैं! धन्य है माँ जी को! और इस बेटे को भी धन्य है!'

दादा की खटमल से बातचीत

प्रश्नकर्ता : फिर क्या हुआ दादा, खटमलों को मारना बंद हो गया? कैसे हुआ?

दादाश्री : मैंने तो फिर दूसरी तरह से जाँच की कि 'भाई, हम जाग जाते हैं और लाइट लगाते हैं तो आप भाग क्यों जाते हो?' तब उन्होंने कहा, 'आप लोग मार दोगे, हिंसक हो'। हम लोगों से भयभीत होकर भाग जाते हैं बेचारे! यह तो खूनी जैसे लगते हैं हम। मैंने तो उनसे पूछा था, कि 'हमें अहिंसक बनना है'। तब उन्होंने बताया, 'आप कैसी हिंसा कर रहे हो? यह आपकी हिंसा का ही फल है। हम फल दे रहे हैं हिंसा का। द्वेषी बनकर आपने हम पर द्वेष किया था'। उसके बाद से मैंने तय किया कि मुझे हिंसक नहीं रहना है।

संस्कारी बा रहे बहू की बहू बनकर

प्रश्नकर्ता : दादा, सास के रूप में कैसी थीं झवेर बा?

दादाश्री : बा के संस्कार बहुत हाई (उच्च), हाई लेवल के संस्कार। ऐसी संस्कारी स्त्री मैंने नहीं देखी। बा उत्तर ध्रुव के और मेरी जो भाभी आई थीं वे दक्षिण ध्रुव। दोनों ध्रुव इकट्ठे हो गए। यानी मैंने तो यह भी देखा और वह भी देखा, मुझे तो दोनों का अनुभव हो गया।

प्रश्नकर्ता : लेकिन क्या बा कुछ नहीं बोलते थे?

दादाश्री : नहीं, कुछ भी नहीं। यह सब तो उन्होंने सहन कर लिया।

प्रश्नकर्ता : बहुत सहनशीलता, ऐसी तो मैंने अभी तक किसी में नहीं देखी।

दादाश्री : हो ही नहीं सकती, हमारे पूरे गाँव में नहीं थी। उनके ऐसे सारे संस्कारों से दिवाली बा (दादा के भाभी) और भी उल्टी चलने लगीं, इस चीज़ का दुरुपयोग हुआ।

प्रश्नकर्ता : उन्होंने ऐसा देखा कि यहाँ पर ढील है।

दादाश्री : हाँ, ढील देखी इसलिए दुरुपयोग हुआ।

प्रश्नकर्ता : उनके दूसरे गुण नहीं देखे?

दादाश्री : वे गुण नहीं देखे और उनकी निर्बलता देखी। इसलिए लोग कहते थे कि 'सास बहू को कुछ भी नहीं कहती इसलिए बहू चढ़ बैठी है'! तब बा कहती थीं, कि 'मैं बहू से क्या कहूँ?' कोई बाहर वाला कहता था तो मुझे जोश आ जाता था! वे कुछ नहीं कहती थीं इसलिए मुझे मन में ऐसा होता था कि मैं कह दूँ उन्हें। उस कारण से फिर मेरा झगड़ा हो जाता था।

तब बा मुझे भी मना करती थीं कि भाभी से कुछ मत कहना। लेकिन वह चारित्रबल तो था ही। चारित्रबल बहुत अच्छा, उत्तम! हमारी बा का चारित्र कितना उच्च!

प्रश्नकर्ता : वे बा तो बा ही थीं, झवेर बा!

दादाश्री : उनका (हीरा बा का) भी चरित्र कितना उच्च था। झवेर बा को (कभी नज़र उठाकर सख्ती से) नहीं देखा हीरा बा ने, (संपूर्ण विनय में ही रहे)। उन्हें (हीरा बा को) भी बा के वे अच्छे संस्कार मिले। दिवाली बा को भी अच्छे मिले लेकिन दिवाली बा एकदम सख्त बेल बन गई थीं न, इसीलिए उनमें से कड़वाहट नहीं गई। बाकी, भाभी थे योगिनी जैसे, उसमें तो दो मत नहीं।

सास ऐसी होनी चाहिए

फिर भी उसके बाद मैं एक बार और रूठ गया था, दस एक साल की उम्र में।

प्रश्नकर्ता : दिवाली बा के साथ दूध को लेकर ऐसा हुआ था न! बा के साथ दूध की झंझट हुई थी न कि मुझे एक पाव और उन्हें भी एक पाव, एक समान नहीं होना चाहिए।

दादाश्री : हाँ, तो भाभी ग्यारह साल की थीं और मैं दस साल का था। फिर जब वे आईं तो मुझे परेशानी हो गई। मेरे हिस्से के दूध में से मुझे कम मिलने लगा, हिस्सा होने लगा न! उन दिनों तो एक पैसे में आधा सेर दूध आता था, दो पैसे में रतल। तो एक पैसे का मैं पीता था और एक पैसे का वे। भाभी को और मुझे, दोनों को एक समान ही दूध मिलता था, आधा सेर।

एक बार हम शाम को खाना खाने बैठे तब मेरी बा ने भाभी को ज़्यादा दूध दिया और मुझे कम। उसके बाद मुझे अंदर बा पर द्वेष हुआ कि 'बा, आप ऐसा करती हो?' तब मैंने तो झगड़ा किया। मैंने बा से कहा, 'मुझे क्यों कम दे रही

हो? मुझे तो ऐसा नहीं चलेगा। मैं तो अपने लिए दूध अलग से लाऊँगा'। अत: दूसरी जगह से भैंस वाले के वहाँ से दूध ले आता था, तो खरीदकर लाता था। उनके लिए कोई दूसरा दूध वाला दे जाता था और मैं अपना खुद ले आता था। मैं अपने लिए आधे सेर की लोटी जितना ले आता था। फिर भी मेरी बा हैं न, वे हमारी भाभी को मुझसे ज़्यादा देती थीं। उनकी कटोरी में देखता था तो उसमें ज़्यादा होता था, उससे मुझे अंदर बहुत जलन होती थी। ये तो बहू बनकर आई हैं और आप दोनों को समान मात्रा में देते हो लेकिन मुझे थोड़ा ज़्यादा मिलना चाहिए।

मैं रूठा ज़रूर था, लेकिन उस दिन सुबह का दूध गया! उसके बाद मैंने तो, दिनभर में क्या-क्या खोया, उसका हिसाब निकाला। मेरा तो सुबह का दूध और ये सब भी गया। मैं रूठा इसलिए इतना नुकसान हुआ! अत: रूठना बिल्कुल नुकसानदेह है इसलिए यह सब बंद कर देना है। टेढ़ा होना ही नहीं है।

बा से मैं क्या कहता था? 'बा, आप मुझे और भाभी को एक समान मानते हो? भाभी को आधा सेर दूध, तो मुझे भी आधा सेर दूध देते हो? उन्हें कम दो'। मुझे अपना आधा सेर रहने देना था, मुझे ज़्यादा नहीं चाहिए था लेकिन भाभी का कम करो, डेढ़ पाव या एक पाव करो।

तब मुझसे कहा, 'मैं, तेरी माँ तो यहीं पर हूँ जबकि उसकी माँ तो यहाँ पर नहीं है इसलिए उसे माँ के बिना सूना लगता है। माँ के बिना वह यहाँ रह रही है न, इसलिए उसे खुश रखना पड़ेगा। पराए घर की लड़की अपने यहाँ आई है तो उसे और ज़्यादा संभालना पड़ेगा वर्ना उसे बुरा लगेगा बेचारी को, उसे दु:ख होगा। इसलिए एक समान ही देना पड़ेगा'।

अपने घर पर ही मैंने सास को देखा है। सास का व्यवहार कैसा होता है वह मैंने अपने घर में ही देखा। मैंने देखा कि सास ऐसी होनी चाहिए, जो बेटे से ज़्यादा बहू को माने!

झवेर बा ने सिखाया, जानबूझकर ठगे जाना

मुझे तो मेरी बा ने समझाया था। वे स्वयं समझदारी से-जानबूझकर ठगी जाती थीं। इसलिए हमने तो बचपन से ही ठगे जाने की सिस्टम ढूँढ निकाली थी, हमारी माता जी ने सिखाया था हमें। वे स्वयं ठगी जाती थीं जानबूझकर। वे सभी को संतुष्ट करती थी। जानबूझकर ठगे जाकर सभी को संतुष्ट करती थी। मुझे वह पसंद आया था कि वे सभी को बहुत अच्छी तरह संतुष्ट करती हैं! भले ही ठगी जाती थीं, अरे पूंजी भी क्या थी जो चली जानी वाली थी? और नहीं तो भी पूंजी नुकसान में नहीं चली जाती?

प्रश्नकर्ता : जाती ही है न, दादा!

दादाश्री : तो उसके बजाय ठगे जाने में चली जाए तो क्या गलत है? यह कला कैसी लगी तुम्हें?

प्रश्नकर्ता : बहुत उत्तम कला है, दादा। परंतु इससे और क्या फायदा होता है? मोक्ष मिलता है? इस गुण से क्या फायदा होता है?

दादाश्री : सबसे बड़ा फायदा इससे ही होता है, इन सब गुणों के बजाय।

प्रश्नकर्ता : दादा, स्पष्टीकरण कीजिए न, ताकि हमें ख्याल आए। किस प्रकार का फायदा है? वह ज़रा यों पता चले न, विश्लेषण करोगे तो!

दादाश्री : देखो, एक तो ठगने वाला व्यक्ति हमें मुक्त कर देता है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, हाँ, इस तरह से हेल्प करता है।

दादाश्री : हमें लपेट नहीं सकता उसके बाद, क्योंकि वह जानता है कि इन्हें बेवकूफ बनाया है। इसलिए बनने वाला मुक्त हो जाता है।

दूसरा, ठगा गया उससे खुद के पास *पुद्गल* था, जो कि गलत था वह चला गया। इसलिए बोझ कम हो गया और खुद को सोचने का मौका मिला कि चलो, हल्के हो गए। अब, मोक्ष ज़रा जल्दी जा पाएँगे। ऐसे सब बहुत गुण होते हैं इसमें तो। उनका वर्णन करने जाएँ तो पूरी किताब बन जाएगी। यह तो मेरी खोज़बीन है। पूरी ज़िंदगी ठगा गया हूँ। ठगे जाने का शौक़ है मुझे। ठगा नहीं किसी को। कोई भगवान होना चाहता है तो ठगे जाकर भगवान हो सकता है और कोई नर्क में जाना चाहता है तो ठगकर जा सकता है। थोड़ा बहुत समझ में आ रहा है?

प्रश्नकर्ता : हाँ, दादाजी समझ में आ रहा है।

दादाश्री : जानबूझकर ठगा जाए तब भगवान हो सकता वह मनुष्य। जिसे ठगा जाना हो वह ठगा जाए।

भोजन समाप्त हुआ और मेहमान आए

प्रश्नकर्ता : आप जब बच्चे थे तब बा ने आपको समझाया, उसी प्रकार क्या ऐसा भी कुछ हुआ था कि बड़े होने के बाद आपने बा को समझाया हो?

दादाश्री : हाँ, एक बार ऐसा हुआ था। उस समय मैं पच्चीस-छब्बीस साल का था। तब एक बार हमारे घर पर ऐसा हुआ कि दोपहर के बारह-साढ़े बारह हो गए थे, तो ऐसे समय पर हम सब खाना खाने बैठे थे। घर में उस दिन हम तीन ही लोग थे। मैं, मेरी वाइफ हीरा बा और (झवेर) बा भी थे। हम तो शहर में रहते थे, तो गाँव में से अक्सर हमारे यहाँ लोग आते ही रहते थे। तो ऐसे टाइम में कुछ ही देर बाद भादरण से तीन-चार मेहमान आ गए! दूसरे तीन तो अलग लेकिन उनमें एक हमारे मामा थे। वे आते ही बोले कि 'भाँजे, हम आए हैं, खाना खाएँगे'।

अब, खाना खाने से पहले यदि चार लोग आए होते न, तो हम खाना रहने देते और दूसरा सरप्लस करके थोड़ी देर बाद साथ में बैठ जाते लेकिन ये तो हमारे खाना खाने के तुरंत बाद ही आए। अंदर पतीली में सब्ज़ी, दाल-चावल वगैरह थोड़ा-थोड़ा बचा था, लगभग सब खत्म हो गया था। अब खाना हो चुका था तो पतीली में सिर्फ एक कटोरी दाल पड़ी थी, बाई ले जाए उतनी ही। चावल भी बस बाई ले जाए उतने ही बचे थे। हमने चार लोग (खुद तीन और चौथी काम वाली बाई) जितना ही बनाया था और दो लोग आ जाते तो ज़्यादा बनाते। वर्ना शहर में तो इन लोगों का ज़्यादा बनाकर फेंकने का रिवाज़ ही नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : अब, जान-पहचान वाले और उसमें भी खास तौर पर रिश्तेदार ही होते थे, वे कहते तो हैं न कि अभी हम खाना खाएँगे, ऐसा कहते हैं न, मज़ाक करते हैं न? तो उन्हें घर में आते देखा तो मैंने आवाज़ लगाई, मैंने कहा, 'आइए, आइए, पधारिए, पधारिए। बैठिए वहाँ पर'। तो वे आगे वाले कमरे में बैठ गए।

पहली बार देखी बा की निर्बलता

गर्मी का मौसम, सख्त गर्मी, मेरी माँ जी मेरे सामने ही खाना खाने बैठी थीं। मुझे कहा, 'ये अभी कहाँ से आ गए?' क्या कहा?

प्रश्नकर्ता : ये अभी कहाँ से आ गए?

दादाश्री : उन लोगों को सुनाई दे उस तरह से नहीं, लेकिन यों हावभाव पर से मैं समझ गया

कि ये क्या कहना चाहती हैं? वे लोग तो आगे वाले कमरे में कपड़े बदल रहे थे और अपने थैले रख रहे थे। उन्हें पता नहीं था कि ये क्या कह रही हैं? लेकिन मैं माँ जी के हावभाव समझ गया। इसलिए मैंने माँ जी से कहा 'बैठिए, अभी शांति रखिए'। इशारे से ऐसे किया तो वे समझ गए।

हम तो वैष्णव डेवेलपमेन्ट (विचारधारा) वाले, फिर भी बा जो थीं न, वे बहुत अच्छे स्वभाव वाली थीं। हमारी बा का मन तो कभी भी, ज़रा सा भी बिगड़ा ही नहीं था न, लेकिन उस दिन बिगड़ गया! उनके मुँह से निर्बलता सुनी एक बार, तब ऐसा लगा कि 'इनका मन बिगड़ रहा है'। ऐसी बा तो मैंने कहीं भी नहीं देखी थी! अड़तालीस साल उनके साथ रहा, लेकिन उनका कोई दोष मैंने नहीं देखा। लेकिन एक ही बार उनका दोष देखा था, उस क्षण कि खुद की मति से या चाहे कुछ भी हो लेकिन बा के मुँह से यह निकल गया! कि 'अरे, ये अभी कहाँ से आ गए!' बा ने अंदर ही अंदर कहा, वह मैंने सुन लिया।

बा को धीरज खोते देखा

हमारी बा बहुत ही खानदानी थीं। बा का स्वभाव बहुत ही उमदा था। हमारी बा बहुत बड़े मन की थीं, बहुत दिलदार मन की, बहुत भावुक, वे तो बिल्कुल देवी जैसी थीं! मुझे संस्कार तो उन्होंने ही दिए थे। फिर भी उनका मन टूट गया और उस क्षण उनकी भावनाएँ खत्म हो गईं। जो कभी भी नहीं बोलीं, खुद उन्होंने मुझसे कहा, 'अरे ये अभी कहाँ से आ गए?' वे तो नोबल (उदार) थीं लेकिन मुझे उनकी 'यह' नोबिलिटी अच्छी नहीं लगी।

अब जिन्हें मैं सब से महान आत्मा मानता हूँ और जिन बा ने मुझे संस्कार दिए थे, वे बा इतनी अधिक मनुष्य प्रेमी थीं कि पूरी ज़िंदगी उसी में अर्पण की थी ऐसे, उनको भी धीरज खोते देखा तो मुझे घबराहट हो गई कि ये क्या कह रही हैं?

अत: मेरे मन पर असर हो गया कि ऐसे खानदानी व्यक्ति यदि ऐसा बोल सकते हैं तो और लोगों की बिसात ही क्या? ऐसे असल खानदानी व्यक्ति को मैंने अपनी ज़िंदगी में देखा, तो मुझे हुआ कि ये भी ऐसा कह रही हैं, जो मुझे ऐसा सिखाती थीं कि 'कोई पथ्थर मारे तो मार खाकर आना लेकिन मारकर मत आना', वे भी ऐसा कह रही हैं? उनमें भी इतनी हीनता आ गई! इसका क्या कारण है? उन्हें ऐसा विचार आया!

थक गई थीं, लेकिन भाव नहीं बिगड़े

फिर मैंने पता लगाया कि, इन्होंने ऐसा क्यों कहा? अब थक तो गई हैं और बा से बेचारे से काम तो नहीं हो पाता लेकिन उनके मन में ऐसा था कि हमारी बहू को अब खाना बनाना पड़ेगा, कितनी मुसीबत है! इसलिए बेचारी बा ने ऐसा कहा।

'आज सुबह से, पूरे दिन काम करके थक गई और फिर अब यह भी करना पड़ेगा?' क्योंकि मेहमान भी ऐसे संयोगों में आए थे जब वे बेचारी थक चुकी थीं और अब वापस बनाना पड़ेगा। अत: वे मन ही मन परेशान हो गईं और मैं भी समझ गया था कि बा और हीरा बा थक चुके हैं, तो अब कौन बनाएगा? तो मैंने कहा कि 'यदि आपसे नहीं हो पाएगा तो मैं बना लूँगा'। उनकी मदद तो करनी पड़ती न बेचारों की!

समय के आधार पर हम समझ जाते हैं न, कि अब ये तो आ गए हैं इसलिए बा के मन में ऐसा हुआ कि 'अभी तो दाल भी नहीं है और कुछ भी नहीं है, जल्दी आए होते तो! हमारे खाना खाने से पहले आए होते तो दाल

थोड़ी इधर-उधर करके, थोड़ी कम लेकर भी अपने साथ ही सब हल ला देते'।

'थोड़ी दाल बची होती तो चावल बना देते। अब तो दोबारा दाल भी बनानी पड़ेगी। अभी दाल खत्म हो गई है। फिर दोपहर में ज़रा सोने का समय हुआ तब ये आए हैं। अब फिर से कब दाल बनाएँगे? दस बजे आए होते तो ऐसा नहीं कहते। अभी यह सब फिर से करना पड़ेगा न,' इसलिए मन में परेशानी हो गई। यानी क्या कि चावल-दाल की नहीं पड़ी थी लेकिन मेहनत की पड़ी थी इसलिए मैं मन में समझ गया कि इन लोगों को मेहनत नहीं करनी है। शरीर में कमज़ोरी आ गई है। बा ऐसे हैं कि कभी भी ऐसा नहीं कहते, लेकिन उन्होंने भी ऐसा कहा! उनके सामने तो अच्छी तरह से बात की कि 'आइए, पधारिए' आँखें भी अच्छी रखकर, लेकिन मन में था कि 'अरे, ये अभी कहाँ से आ गए?'

मैंने कहा, 'ऐसा? क्या कहा यह?' धीरे से पूछा। वे लोग तो बाहर बैठे थे। मैंने कहा 'आप ऐसा? आप मुझे ऐसा सिखाते हो, ऐसा शोभा नहीं देता'। तब वे तुरंत ही पलट गई। 'नहीं, कुछ भी नहीं' ऐसा कहा। तब मैं समझ गया कि इनका कोई दोष नहीं है। 'अब ये लोग थक गए हैं, मन से थक गए हैं। अन्य कोई भाव नहीं बिगड़ा है इनका'।

उसके बाद मैंने कहा, 'मैं सब कुछ कर लूँगा। आप आराम करो। सादा बनाऊँगा, फिर मैंने बना दिया। इधर-उधर करके हलवा-वलवा बनाकर दे दिया सारा और थोड़ी कढ़ी बना दी, इतना हलवा बनाया था और थोड़ी खिचड़ी बना दी। दाल-चावल तो राम तेरी माया! 'यह बिल्कुल आसान है, दाल-चावल बनाने की परेशानी क्यों मोल लें!' मैंने सोचा। उसके बाद उन लोगों ने अच्छी तरह से खाना खाया। हलवा खाकर खुश हो गए वे लोग।

'दोपहर बारह बजे बाद यदि कोई व्यक्ति आए और आपकी तबीयत ज़रा नरम हो तो सोते रहना, मैं खुद बना लूँगा। आया है तो भाव नहीं बिगाड़ना, वर्ना खाना तो फिर भी खिलाना ही पड़ेगा लेकिन भाव बिगाड़कर खिलाओगे तो मुझे नहीं पुसाएगा। आचार बिगड़ेगा तो चलेगा लेकिन आपका मन बिगड़ेगा तो मैं वैराग्य ले लूँगा'।

मैंने इतनी धमकी दी थी। उसके बाद उन्होंने ऐसा नहीं किया। उसके बाद से घर में कभी भी किसी के लिए भाव नहीं बिगड़ा ज़रा सा भी। ऐसा कैसे शोभा दे सकता हैं हमें? उसके बाद से सब बदल गए क्योंकि उनमें डर बैठ गया कि ये वैराग्य ले लेंगे तो। उसके बाद घर पर वातावरण ऐसा ही हो गया। चाहे कोई भी आए लेकिन भाव नहीं बिगड़े। मैंने कहा, उसके बाद तो कई सालों तक ऐसा रहा, मन भी नहीं बिगड़ा।

जगत् प्रेम ढूँढता है, चीज़ नहीं

जगत् प्रेम से जो दो, वह खाने को तैयार है। ये लोग अच्छा भोजन कराते हैं, उससे परेशान हो गए हैं। प्रेम से दी गई रोटी लोगों को पसंद है। अतः प्रेम से खिलाया तो बहुत हो गया।

प्रेम की ज़रूरत है, अन्य कोई ज़रूरत नहीं है। जगत् प्रेम ढूँढ रहा है, चीज़ें नहीं ढूँढ रहा। अब, वहाँ पर तू भोजन माँग रहा है? तुझ पर प्रेम रखते हैं तो तुझे ऐसा लगता है कि बहुत अच्छा है। कोई बुराई नहीं करता है न, खिचड़ी-कढ़ी खिलाएँ, तब भी? हाँ और बुराई करें तो भी हर्ज नहीं है। चाहे कुछ भी हो फिर भी प्रेम से खिलाओ। हाँ, मनुष्य को भूख के समय पर भोजन चाहिए। क्या वह उसके घर पर खिचड़ी-कढ़ी नहीं खाता, तो अपने यहाँ नहीं खाएगा? वह उसके घर पर रात को खाता हो, तो अपने यहाँ दिन में खिलाएँगे। जो हो वह देना, हाज़िर

स्टॉक में जो भी हो वह। अपने लिए तो प्रेम ही भोजन है!

प्रश्नकर्ता : स्टॉक ही न हो तो?

दादाश्री : किस चीज़ का?

प्रश्नकर्ता : रोटी या कुछ भी नहीं हो तो?

दादाश्री : नहीं हो तो क्या हर्ज है? आप कहना, 'बैठिए जी, खाने को कुछ भी नहीं है, आज खाली है। अभी चना-नमकीन ऐसा कुछ मंगवा देते हैं। ये छः आने हैं मेरी जेब में, उसमें से हम सभी खा लेंगे। चलो, चाय और नाश्ता कर लेते हैं'।

अपने यहाँ पर भाव नहीं बिगाड़ना चाहिए। हम कौन लोग हैं! कहाँ अपना व्यवहार! निश्चय न हो तो ठीक है लेकिन व्यवहार तो उच्च होना चाहिए न? यही सब से बड़ा तप है। उसके बाद ज़िंदगी भर उन्होंने इस नियम का पालन किया। लेकिन इस घटना से उन्हें बहुत ही पछतावा हुआ। यह तो, वे मेहमान आए, वह व्यवस्थित, वे रहे, वह भी व्यवस्थित और चले गए, वह भी व्यवस्थित। तो फिर उल्टा विचार आएगा? नहीं आएगा। फिर वे जो कुछ भी खाते हैं, वह अपने हक़ का ही खाते हैं तो फिर उनके लिए उल्टा विचार ही नहीं आएगा और प्रेम से खाना खाकर जाएँगे।

'हम' छोटे थे फिर भी बा पूछती थीं

प्रश्नकर्ता : दादा, ऐसा भी सुना है कि आप छोटे थे, फिर भी बा आपसे पूछते थे!

दादाश्री : हाँ। एक बार व्यवहार में किसी को कुछ देना था तब हमारी बा ने हम से पूछा कि 'इसमें क्या करना चाहिए? क्या दूँ?' तब मैंने कहा, 'बा, आप छोटी-छोटी बातों में मुझसे क्यों पूछती हो? आप अस्सी साल की, मैं चवालीस साल का, तो मुझसे ज़्यादा तो आप जानती हो। आपको जो ठीक लगे वह करना'। तब बा ने कहा, नहीं, पूछना चाहिए तुझसे। मनचाहा नहीं कर सकते'। 'अस्सी साल का सुथार और पाँच साल का घर का मालिक' लेकिन घर के मालिक से पूछना पड़ता है। मैं चाहे कुछ भी (माँ) हूँ फिर भी सुथार ही मानी जाऊँगी।

बा का उपकार, परदेश नहीं जाने दिया

प्रश्नकर्ता : बा की अन्य कोई बातें हों तो बताइए न, दादा।

दादाश्री : आई.वी.पटेल मुझे आफ्रिका ले जाना चाहते थे। मुझे वहाँ की किसी कंपनी में लगाना चाहते थे लेकिन मुझे ऐसा लगा कि मुझे वहाँ पर नौकरी करनी पड़ेगी और वहाँ पर फिर मुझे झिड़केंगे। मेरी मदर को भी ऐसा था कि परदेश नहीं भेजना था।

प्रश्नकर्ता : कितनी उम्र थी तब आपकी?

दादाश्री : अठारह साल का था तब से भेज रहे थे, आफ्रिका जाने कि लिए...

प्रश्नकर्ता : मूलजीभाई भेज रहे थे?

दादाश्री : मूलजीभाई के मामा के बेटे लगते थे आई.वी.पटेल। तो आई.वी.पटेल ने कहा, 'मैं ले जाऊँ अंबालाल को?' वह तो फिर बा ने नहीं जाने दिया। बा ने कहा 'मुझे परदेश नहीं भेजना है, मेरे पास ही अच्छा है'। मुझे तो ज़्यादा कुछ नहीं चाहिए था। काम चल रहा था कॉन्ट्रैक्ट का यह सब ऑलरेडी (बराबर)। बाकी, घर पर तरसाली में (पाँच-सात बीघा ज़मीन) थी, ज़रा उसकी आमदनी थी और यहाँ (दस बीघा भादरण की ज़मीन) की आमदनी थी।

प्रश्नकर्ता : बा ने तो पूरी दुनिया पर बहुत बड़ा उपकार किया!

दादाश्री : बा तो मुझे कहीं जाने ही नहीं देती थीं। मेरे बिना बा को अच्छा नहीं लगता था। वहाँ चले गए होते तो बहुत हुआ तो अमीर बन गए होते तो अमीर बनकर फिर लोगों की गुलामी करो। छोड़ो न, यह क्या भूत? भगवान को खोजने की इच्छा थी बचपन से ही। उस गोल (ध्येय) के स्टेशन तक पहुँच गए। जिसे लोग, पूरी दुनिया खोज रही है, हम उस जगह पर पहुँच गए हैं इसलिए शांति हो गई, काम पूरा हो गया।

'मेरे लिए तो तू आ गया, तो बस'

हमारी बा की बहुत उम्र हो गई थी न, तब बा छिहत्तर साल की थीं तब से लेकर आखिरी आठ साल तक मैं उनके पास ही रहा था। क्योंकि वे 'मेरा अंबालाल, मेरा अंबालाल, मेरा अंबालाल' करती रहती थीं। और कुछ भी नहीं चाहिए था। मेरा चेहरा देखते कि खुश! रात को कई बार वे ऐसे चौंककर उठ जाती थीं, 'मुंबई से नहीं आया, मुंबई से नहीं आया'। इसलिए फिर मैंने अपने पार्टनर से कहा 'कुछ समय के लिए आऊँगा लेकिन ज़्यादातर यहाँ बा के पास रहूँगा'।

हाँ, मदर तो बहुत अच्छी थीं। मेरे बगैर उन्हें बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगता था। मुझे बाहर गाँव से वापस आना पड़ा था। वहाँ उनके पास रहना पड़ा था। 'बाकी सब करना। मुझे पैसे भी नहीं चाहिए, ये कुछ भी नहीं चाहिए।' पैसे तो कभी भी माँगे ही नहीं, कभी भी नहीं। देते थे तब भी कहती थीं कि मुझे पैसों का क्या करना है? मेरे लिए तो तू आ गया तो बहुत हो गया!

मैंने कहा 'बा, आपको पैसे क्यों नहीं चाहिए?' तो ऐसा कहा कि ''अपने यहाँ कहावत है कि 'बाप देखता है लाते हुए और माँ देखती है आते हुए'। मेरे लिए तो तू आया तो बहुत हो गया।'' और बाप तो, 'क्या लाया', ऐसा पूछते रहते हैं। मुंबई से आया तो तू कुछ लाया है क्या? अभी ऐसा नहीं होता है न? माँ भी लाता हुआ ही देखती है?

बा को चौबीसों घंटे अंबालाल याद रहते थे। मैं अगर मुंबई जाऊँ तो उनसे रहा नहीं जाता था, सहन नहीं हो पाता था। और कुछ भी नहीं चाहिए था, बस अंबालाल चाहिए। चौबीसों घंटे, सिर्फ यही ध्यान, जब देखो तब ध्यान में वही रहता था। अत: मुझे आखिरी सात-आठ सालों तक यहीं रहना पड़ा काम-धंधा छोड़कर। उनके साथ ही बैठा रहता था। फिर मंत्र बुलवाता था, दूसरा कुछ बुलवाता था और कुछ बुलवाता था।

'दर्शन करने जैसा सिर्फ तू ही'

बा तो कभी भी बाहर मंदिर में दर्शन करने नहीं गए। अष्टमी हो या गोकुलाष्टमी हो, सभी दोस्त क्या कहते थे कि कल बा को दर्शन करवाने के लिए गाड़ी भेजूँगा। तब मुझे किसी से गाड़ी लेना अच्छा नहीं लगता था। इसीलिए फिर मैंने बा से पूछा कि 'कल दर्शन करने जाने के लिए गाड़ी की ज़रूरत हो तो...' तब बा ने कहा 'भाई, मैं तो अपनी ज़िंदगी में सिर्फ यही मानती हूँ कि दर्शन करने योग्य कोई है तो सिर्फ तू ही है'।

मैं कहीं भी दर्शन करने नहीं जाता था। तो हमारे घर में से हम दोनों लोग दर्शन करने के लिए नहीं गए किसी भी जगह पर। बा कहती थीं 'दर्शन करने के लिए तू तो घर में है ही, फिर मुझे दर्शन करने क्यों जाना है? मुझे दर्शन करने बाहर जाने की ज़रूरत ही नहीं है'। अत: बा कभी भी दर्शन करने नहीं गए। बा के लिए तो यही दर्शन, जो भी कहो सब, यही।

दादा भगवान को पहचान लिया था

लोग क्या देह को नमस्कार करते हैं? नहीं,

वे तो पूज्य गुणों की वजह से नमस्कार करते हैं। हमने अपनी बा से कहा था, 'अब आपको बाहर दर्शन करने जाने की ज़रूरत नहीं है। अब घर पर ही दर्शन करना'। तो हमारी बा रोज़ हमें नमस्कार करती थीं।

बा तो कम्प्लीट मानती थीं कि 'तू भगवान हैं, मेरा भगवान तू हैं'। मैंने कहा भी था कि 'आपके यहाँ भगवान आए हैं', तब उन्होंने कहा, 'हाँ मेरे यहाँ आए हैं'। बा मानती थीं लेकिन बाकी सब लोगों को कैसे समझ में आता बेचारों को? समझ में आना चाहिए या नहीं? समझ में आए बिना क्या करते? हीरा हो फिर भी कोई ले जाए दो बिस्किट देकर। ले लेंगे या नहीं लेंगे?

प्रश्नकर्ता : ले लेंगे।

दादाश्री : इस दुनिया का आश्चर्य ही कहे जाएँगे ये दादा भगवान!

मन न दुभे, ऐसे दादा के प्रयोग

प्रश्नकर्ता : दादा, आप भी बा का बहुत ध्यान रखते थे न?

दादाश्री : मैं बड़ौदा में बाहर निकलता था तो मेरा सर्कल ऐसा था कि किसी जगह पर फ्रेन्ड के वहाँ जाता तो फ्रेन्ड के वहाँ कोई गेस्ट आए हुए होते तो कहते कि 'आज तो खाने पर बैठ ही जाओ। आपको बैठना ही पड़ेगा, चलेगा ही नहीं। आज ये एकदम नई ही तरह के आम लाए हैं, आप बैठ जाओ'। वह पीछे पड़ जाता था, तब फिर उसे मैं मना नहीं कर पाता था। वहाँ पर एक पूरी और इतना रस ज़रा-ज़रा सा खा लेता था। फिर मैं कहता था कि 'मेरी तबीयत ज़रा ठीक नहीं है, तबीयत ठीक नहीं है'। तो वहाँ पर इतना ही लेता था।

फिर दूसरी जगह किसी जान-पहचान वाले के यहाँ जाता और वह कहता कि 'आज तो आप खाना खाकर जाओ'। तब फिर से कभी ऐसा संयोग मिल जाता तो दूसरी जगह पर भी खा लेता था, लेकिन शुरू से मैं ज़रा सा ही लेता था। मैं जानता था कि यह सब तो खेल है अपना।

फिर जब घर आता था तब बा के साथ खाता ही था। नहीं तो बा बिना खाए ही बैठी रहती थीं और अगर घर पर आकर न खाऊँ तो बा को बुरा लगता। बा कहतीं कि 'तू मेरे साथ नहीं खाता है लेकिन मैं तेरे साथ खाती हूँ'। तब फिर बा के साथ खा लेता था!

प्रश्नकर्ता : तो अगर बा के साथ नहीं खाते तो नहीं चलता था?

दादाश्री : नहीं। अगर मैं नहीं खाऊँ तो बा का मन दुःखता था। इसीलिए तो मैं दोस्तों के वहाँ थोड़ा-थोड़ा ही खाता था, इतना-इतना सा और घर आकर थोड़ा खा लेता था। बचपन से ही ऐसा प्रयोग किया था। दोपहर को एक ही बार खाना हो, उसके बजाय तीन-तीन बार खाता था। एक जगह पर साढ़े ग्यारह, दूसरी जगह पर बारह और तीसरी जगह पर साढ़े बारह बजे खाता था।

तीनों के मन के समाधान के लिए

प्रश्नकर्ता : लेकिन उस समय इस तरह तीन जगहों पर क्यों खाना खाते थे?

दादाश्री : कोई बहुत ही पीछे पड़ जाए तो उसके मन के समाधान के लिए। फिर कोई दूसरा कहे तो उसके मन का समाधान करने के लिए और फिर बा के साथ।

प्रश्नकर्ता : तीनों के ही मन का समाधान करने के लिए।

दादाश्री : हाँ। पहले वाले के वहाँ एक रोटी खाता, फिर दूसरे के वहाँ एक रोटी खाता

और अंत में दो रोटी खा लेता था लेकिन सभी को खुश रखता था। दोस्त को भी खुश रखता था, वहाँ दूसरे को भी खुश रखता था और बा को भी खुश रखता था। मेरी तरह ऐसा तो कोई भी नहीं करता होगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अगर बा को खुश नहीं रखते तो चल जाता।

दादाश्री : लेकिन क्या बा को चल जाता? और उस फ्रेन्ड को भी खुश रखना पड़ता था क्योंकि उसके यहाँ पर कभी गेस्ट आए हुए हों और मेरे जैसे को न बैठाए तो उसके मन में दु:ख होता।

प्रश्नकर्ता : अत: ज्ञान के बाद से ऐसा सब था या पहले से?

दादाश्री : ज्ञान से पहले, ज्ञान के बाद तो ऐसा होता ही नहीं न! किसी के वहाँ खाना खाने नहीं जाते थे। उसके बाद तो कहीं खाना खाने बैठे ही नहीं न! (1968 में मुंबई में मासी बा के वहाँ पर शुरू हुआ) और अभी अगर हम खाना खाएँ तो कोई नहीं डाँटेगा। ज्ञान से पहले यह सब बा के समाधान के लिए, बुज़ुर्ग बा के लिए! अत: इस प्रकार से कई बार तीन-तीन बार खाना पड़ा था मुझे, फिर भी उनके मन के समाधान के लिए घर पर भी खाना खाता था। मन को बिल्कुल भी वह (दु:ख) नहीं होना चाहिए। पहले मैं उन्हें मना करता था और यदि मान जाते तो ठीक। 'मेरी तबीयत ठीक नहीं है' ऐसा कहता था लेकिन यदि फिर भी कहते तो खा लेता था।

खाने की मात्रा उतनी ही

प्रश्नकर्ता : फिर भी उससे खाने की मात्रा नहीं बदलती थी, भोजन लेते थे लेकिन उसकी मात्रा संभालकर!

दादाश्री : मात्रा उतनी ही, मात्रा अधिक नहीं होती थी। चाहे कितना भी स्वादिष्ट भोजन हो फिर भी नहीं खाते थे। मात्रा संभालने के लिए कोई ऐसी चीज़ होती जो खा सकते थे, गेहूँ की होती फिर भी एक तरफ रख देता था उसके बावजूद भी तीन बार खाने से अगर अजीर्ण हो जाता तो शाम को कह देते थे कि 'आज तबीयत खराब है, शाम को नहीं खाना है'। लेकिन किसी को वह (दु:ख) नहीं होने देते थे। बा को तो मैंने इतना सा भी बुरा नहीं लगने दिया, ज़िंदगी भर। ऐसी बा नहीं मिलेंगी। कभी भी देखने को नहीं मिलेंगी, ऐसी बा! और यदि उन्हीं के साथ ऐसा करता तो मेरा क्या होता? इसीलिए तीन-तीन बार खा लेता था।

खुश रखकर काम लेना है

फिर आखिर में बा से कहा भी था कि, 'मैं तीन-तीन बार खा लेता हूँ, आपके कारण'। बा ने पूछा, 'वह कैसे भाई?' फिर मुझसे पूछती थीं। फिर हीरा बा उन्हें सिखाती थीं न, कि 'कम क्यों खा रहे हैं, क्यों आप से खाया नहीं जा रहा है', ऐसा कुछ पूछिए तो! हीरा बा जानती थीं कि बाहर खाकर आए हैं। तो बा मुझसे पूछती थीं, 'क्यों आज तुझसे खाया नहीं जा रहा है? क्यों भाई आज खाया नहीं जा रहा है?' मैं कहता था, 'ज़रा ऐसा है न'! तो वे समझ जाती थीं फिर। फिर कह देता था कि 'मुझे बाहर खाना पड़ा है और आपके साथ तो खाना ही पड़ेगा', क्या हो सकता था? देखो, खुश रखकर सारा काम करना है, जितना हो सके उतना। बाकी सब व्यवस्थित के ताबे में हैं। ठोकर मारकर चले जाएँ तो वह नहीं चलेगा। तुझे कैसा लगता है?

प्रश्नकर्ता : ठीक है दादा।

तटस्थता से बा का निरीक्षण

प्रश्नकर्ता : झवेर बा का देहांत कब हुआ था?

दादाश्री : 1956 में, मैं अड़तालीस साल का हुआ तब तक वे थे।

प्रश्नकर्ता : यानी बा के जाने के बाद ज्ञान हुआ?

दादाश्री : बा के जाने के दो साल बाद ज्ञान हुआ। बा को तो मूर्ति कहना पड़ेगा!

तब मेरी मदर की उम्र चौरासी साल थी। रोज़ ऐसा कहती थीं कि 'जब तक मुझे आँखों से दिखाई देता है, तब तक मुझे कोई हर्ज नहीं है'। थोड़ा खा सकती थीं, चल-फिर नहीं सकती थीं, तो फिर मैं उनके पास बैठे-बैठे क्या करता? अत: रोज़ सहजात्म स्वरूप का मंत्र बुलवाता रहता था। मैं बुलवाता था तो वे बोलती रहती थीं। मुझे ज्ञान नहीं हुआ था उस समय। यों तो उनके मन में ऐसी इच्छी थी कि 'अभी तो मेरी आँखें अच्छी हैं तो मुझे कोई हर्ज नहीं है'। एक बार मैंने पूछा था, 'बा, अब जाना है?' तब कहा 'नहीं, शरीर अच्छा है, मेरी आँखें-वाँखें अच्छी हैं'। तो मैं समझ गया कि अंदर से इनकी जाने की नीयत नहीं है। 'मुझे यह रास आ गया है' कहते थे। चौरासी साल हो गए थे, इतनी परेशानियाँ थीं फिर भी अभी 'रास आ गया है' यह नहीं छूटता।

अब मुझे तो मातृप्रेम रहता ही न? मातृभक्ति रहती न? लेकिन किसलिए? मैं तटस्थ रूप से देखता था कि 'ओहोहो! मनुष्यों के स्वभाव कैसे-कैसे होते हैं! कितने बड़े, महान! इतने बड़े नोबल माइन्ड वाले थे, फिर भी कहते थे कि 'अभी तो मेरी आँखें अच्छी हैं न!' तब मैंने सोचा 'नीयत है इनकी जीने की'।

'आज बा ने हस्ताक्षर किए'

मैं तो रोज़ जाँच करता रहता था, हर बात में जाँच करता था। हमारे वहाँ मामा के बेटे रावजीभाई आए हुए थे। वे उम्र में मुझसे चार-पाँच साल छोटे थे। एक दिन मैं और रावजीभाई, हम दोनों साथ में बाहर सो रहे थे।

रात के बारह बज चुके थे तो हम तो सो गए थे। रात के बारह-एक बजे होंगे और हमारी बा के पेट में दर्द हुआ होगा तब वे धीरे से बोलने लगीं अंदर। तो रात को एक बजे मैं जाग उठा। तब अंदर वे बोल रही थीं 'हे भगवान, अब तो उठा ले मुझे। अब छूट जाएँ तो अच्छा है! अब छोड़'। तब मैंने साथ में सो रहे रावजीभाई को जगाया, मैंने उन्हें हिलाकर जगाया। मैंने कहा 'देखो, बा ने हस्ताक्षर कर दिए! मैं रोज़ कहता हूँ हस्ताक्षर, तो आज हस्ताक्षर कर दिए। सुनना।'

तब बा फिर से बोले, 'हे भगवान! तू उठा ले'। दो बार बोले। दूसरी बार में उन्होंने (रावजीभाई) सुन लिया। मुझसे कहा, 'क्यों ऐसा कहा? ऐसा क्यों कहा? मैंने कहा, 'कोई दु:ख होगा तभी बोले न!' क्योंकि अंदर जो दु:ख होता है वह सहन नहीं हो पाता तब व्यक्ति ऐसा भाव कर लेता है कि 'अरे! छूट जाएँ तो अच्छा'। तो वे हस्ताक्षर कर देते हैं। देखो न, बा ने हस्ताक्षर कर दिए। इसी तरह से (कुदरत) हस्ताक्षर करवा लेती है। अंदर ऐसी मार लगती है कि हम से हस्ताक्षर करवा लेती है। फिर हस्ताक्षर कर देते हैं या नहीं कर देते?

तब उस दिन सुबह मैंने रावजीभाई से, हीरा बा से, सभी से कहा कि 'अब कुछ ही दिनों की मेहमान हैं बा। अभी तक इस फॉर्म पर हस्ताक्षर नहीं किए थे, अब हस्ताक्षर कर दिए हैं। इसलिए अब तैयारी है। अब पाँच-दस दिनों में वे (यमराज) लेने आएँगे। इन्होंने ऐसा कहा, इसका मतलब हस्ताक्षर कर दिए। अब पंद्रह दिन निकालेंगी। इसलिए अब पंद्रह दिन तक ध्यान रखते रहना। अब पंद्रह दिनों में तैयारी करो, विदिन फिफ्टीन डेज़'।

मदर अंतिम स्थिति में थी तब...

हमारी बा थीं न, चौरासी साल की उम्र में उनकी डेथ हो गई। यों तो उस समय बा की तबीयत बहुत अच्छी थी! हमारी बा का जब अंतिम समय था तब वे बिस्तर पर ही थीं, तब मृत्यु के दो घंटे पहले पूछा कि 'कौन-कौन बैठे हैं? तो उन्होंने आँखें खोलीं और सब तरफ देखा कि कौन-कौन है! हमारी मामी थीं और उनका बेटा था। मैंने कहा कि 'ये जयरामभाई' तो कहा 'हाँ, हाँ बैठो'। और दो घंटे बाद तो अंदर से चलने की तैयारी कर ली। उसके बाद फिर उनकी साँस ज़ोर-ज़ोर से चलने लगी, तब मैं जान गया कि तैयारी कर ली है। अब ये जा रही हैं। तब मैंने सब से कहा 'आज तैयारी है'।

फिर मैंने कहा, 'आप अपनी विधि करना, नवकार मंत्र बोलना और मैं मेरी विधि कर रहा हूँ'। हीरा बा को उनके सामने बैठाया और (मैं) सभी विधियाँ करने लगा। मैंने डेढ़-दो घंटे तक विधियाँ कीं। और बा विधियाँ खत्म होने पर गईं।

मदर के प्रेम में रोना आया था

प्रश्नकर्ता : दादा आप पर किसी के मृत्यु का ऐसा कुछ असर हुआ था?

दादाश्री : 1956 में हुआ था। ज्ञान होने से पहले हमारी मदर की डेथ हो गई थी। उस दिन रोना आया था।

प्रश्नकर्ता : तो वह जो आप पर असर हो गया, रोना आ गया, उस समय आप कहाँ थे?

दादाश्री : कहाँ?

प्रश्नकर्ता : आप जो दृष्टा भाव में...

दादाश्री : नहीं! उस समय दृष्टा भाव नहीं था। उस समय तो 'मैं अंबालाल ही हूँ', वही था। उसके दो साल बाद यह ज्ञान हुआ।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, कांतिभाई गए तब आप पर ज़रा सा भी इफेक्ट नहीं दिखाई दिया।

दादाश्री : नहीं, उस दिन रोना नहीं आया था। उस दिन तो मैं दूसरे गाँव गया था। यहाँ होता न तो आता। मुझे रोना किस पर आता है? मरने वाले पर नहीं आता लेकिन लोगों को कमज़ोर देखता हूँ न, तब मुझे रोना आ जाता है। कोई वहाँ पर सुबक-सुबककर रो पड़े न, उसे देखूँ तो फिर मुझ पर असर हो जाता है। अभी भी असर हो जाता है। यहाँ पर कोई रो रहा हो न, तो असर हो जाता है। लेकिन उससे दूसरे लोगों पर ज़्यादा असर पड़ेगा, ऐसा मानकर उस पर भी कंट्रोल कर लेते हैं हम। दूसरों पर ज़्यादा असर हो जाएगा न! बाकी, शरीर तो ऐसा ही है, देह तो ऐसी ही है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा नहीं, दादा। वे दोनों स्थितियाँ, मदर की डेथ हो गई, तब और अभी, उन दोनों में क्या फर्क है?

दादाश्री : उन दिनों तो सिर्फ मदर का प्रेम था, प्रेम ही रुलाता है।

राजसी व्यक्ति और सरल जीवन

प्रश्नकर्ता : माता जी के साथ पिताजी के संस्कार कैसे थे? पिताजी क्या करते थे?

दादाश्री : वे तो राजसी व्यक्ति थे। वहाँ हमारी ज़मीन थी, वहाँ पर घोड़ा रखते थे न!

वे साफा पहनते थे न, तब राजकुमार जैसे दिखाई देते थे। फादर ने ईज़ी लाइफ (सरल ज़िंदगी) ही रखी थी। कोई बिज़नेस नहीं करते थे, क्योंकि साधारण रूप से काम चलता रहता था घर की कमाई से।

प्रश्नकर्ता : खेती-बाड़ी थी?

दादाश्री : खेती-बाड़ी की कमाई से चलता

रहता था। वह भी ज़्यादा नहीं, परिवार का गुज़ारा हो सके, सिर्फ इतना ही।

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : सरल तरीके से।

पिताजी को यह बेटा अलग लगा

प्रश्नकर्ता : फादर के साथ की कुछ बातें बताइए न!

दादाश्री : मेरे फादर ने मुझसे कहा कि 'कुछ कसरत करनी चाहिए, सुबह घूमने जाना चाहिए'। मैंने कहा, 'घूमने का टाइम नहीं मिलता'। तब उन्होंने कहा कि 'टाइम निकालना चाहिए, शरीर अच्छा रहेगा'। तब मैंने कहा, 'जाऊँगा'। तब उन्होंने पूछा कि, 'किस तरफ जाएगा?' तब मैंने कहा, 'यहाँ गाँव की सीमा की ओर'। तब उन्होंने कहा, 'नहीं, नज़दीक ही अपना जो खेत हैं, वहाँ जाना'। मैंने कहा, 'खेत पर जाकर क्या करना है?' तब उन्होंने कहा, 'वहाँ पर आम के पेड़ लगाए हुए हैं, हमने दसेक आम के पेड़ लगाए हैं, तो रास्ते में से बाहर से एक थैली में थोड़ा दड़ (उपजाऊ मिट्टी) ले जाना और थोड़ा-थोड़ा दड़ डालकर आना'। अपने यहाँ दड़ होती है न...

प्रश्नकर्ता : मिट्टी *(दड़)*, हाँ।

दादाश्री : रोड पर से मिट्टी ले जाकर उनमें डालना, जब भी समय हो तब। दड़ डालकर आओगे तो फिर आपका घूमना हो जाएगा और कसरत भी हो जाएगी। फादर से मना नहीं कर सकते थे इसलिए थोड़ा-बहुत करते थे। फादर को मना नहीं किया लेकिन मैंने कहा, 'मुझे आम के पेड़ का लालच नहीं है, आम खाने का कोई लालच नहीं है। यह काम मेरा नहीं है। जिन्हें आम खाने हों वे डालें'। तो कुछ समय बाद जब वह खेत बेचा तब मैंने उनसे कहा कि, 'देखो अगर आम होते तो पेड़ के साथ ही बिक जाते न! यह धूल-वूल डालना सब बेकार ही जाता न!' आम कौन खाएगा? अरे! छोड़ो यह बात! कहाँ किसानों के नियम और यह सब कहाँ चला गया! मैं जानता हूँ इस दुनिया का रिवाज़, जिसके हाथ में खेत है उसी के आम। बाद में खेत पर से आम घर पर ला सकते हैं या नहीं?

प्रश्नकर्ता : बेचने के बाद तो नहीं ला सकते।

दादाश्री : तो फिर हमारा धूल डालना बेकार जाता है न? दड़ डालना बेकार जाता है न? फिर भी हमने क्यों डाली थी?

प्रश्नकर्ता : यह तो दृष्टि पर आधारित है। दृष्टि बदल जाए तो वह दड़ ठीक है, दूसरे के पास चली गयी।

दादाश्री : नहीं, लेकिन ये सब फँसाव हैं! इसलिए मेरे पिताजी ने कहा कि 'आपको अंदर से पता था कि इसका ऐसा होने वाला है!' मैंने कहा, 'आपको जो मानना है वह मानिए'। तब उन्होंने कहा, 'तेरी जन्मपत्री बहुत (उच्च) अच्छी है!'

मुझे तो भगवान ही चाहिए थे

तो ऐसा सब तूफान था! कहाँ इस तरह दड़ डालें और कहाँ ये सारे आम के पेड़ लगाएँ', वे कब खाएँगे और कौन खाएगा, उसका क्या ठिकाना? ये तैयार आम खाओ न चुपचाप! हाँ, जिसे बाग उगाने हों, बाग का मालिक बनना हो, वह भले ही उगाए। हमें इसका मालिक नहीं बनना हैं। हमें इसका गर्वरस नहीं चाहिए। गर्वरस वाले बहुत हैं, वे खुद बाग बनाएँगे, पेड़ उगाएँगे और उनमें आम आएँगे! ऐसे बहुत लोग हैं! यहाँ कोई कमी है? सभी तरह के लोग हैं!

मुझे ऐसा नहीं चाहिए था, मुझे तो भगवान ही चाहिए थे। इन आम-वाम की मुझे नहीं पड़ी

थी। फिर भी यह ममता छोड़नी नहीं थी। ममता रखनी थी, लेकिन कैसी? मालिकी रहित ममता। ओनरशिप नहीं, टाइटल नहीं।

जन्मपत्री उच्च, इसलिए मर्यादा रखते थे

प्रश्नकर्ता : आपने पहले बताया उसके अनुसार क्या आपकी जन्मपत्री उच्च योग बताती थी?

दादाश्री : हाँ, यह पद मिलना था, वह तो ज्योतिषी ने कहा था, फादर-मदर से कि यह अलग ही तरह के पुत्र का आपके यहाँ जन्म हुआ है!

प्रश्नकर्ता : जन्मपत्री किसने बनाई थी?

दादाश्री : उन्होंने ही बनाई थी। ऐसी गोल-गोल पीली सी बनाई है। वह यहाँ से पच्चीस फुट लंबी है, तो उसे पढ़ते रहते थे।

उसके बाद से फादर और अन्य सभी मेरी इज्जत करते थे।

फादर बड़े भाई को भी डाँटने नहीं देते थे

बड़े भाई मुझे डाँटते थे, हालांकि वे मुझसे बीस साल बड़े थे, इसलिए डाँटते थे। मैं बारह साल का था और वे बत्तीस साल के। तो फिर ब्रदर (भाई) तो बड़े ही कहलाएँगे न, ज़्यादा उम्र वाले वे। वे तो डाँटेंगे ही न, बाकी फादर ने कभी नहीं डाँटा। फादर ने तो ब्रदर से ऐसा कहा था कि 'इसे मत डाँटना। इसकी जन्मपत्री अलग तरह की है!' लेकिन ब्रदर तो डाँटते थे।

तो फिर मेरे बड़े भाई डाँटते थे न, तो मेरे पिताजी कहते थे, 'मणिभाई, इससे कुछ मत कहना, एक अक्षर भी नहीं कहना है इसे! जन्मपत्री तो देखो, इसकी जन्मपत्री देखी है क्या? यह व्यक्ति ऐसा नहीं कि इससे कुछ कहा जाए, इसे डाँटना मत'।

प्रश्नकर्ता : ऐसा कहते थे?

दादाश्री : हं। फिर भी बड़े भाई तो डाँटे बगैर रहते ही नहीं थे न! बड़े भाई थे न, तो उसके पीछे प्रेम था, सच्चा प्रेम और सच्चे प्रेम की खातिर अगर वे मुझे डाँटें तो क्या, अगर मारते तब भी मैं नहीं लड़ता। अतः मैंने तो बा का प्रेम देखा, पिता का प्रेम देखा, बड़े भाई का प्रेम देखा, सभी का प्रेम देखा।

जिज्ञासा वश फादर से प्रश्न पूछें

प्रश्नकर्ता : दादा, आप शुरू से ही फादर से बहुत प्रश्न पूछते थे?

दादाश्री : हाँ। हालांकि मेरे फादर मुझसे चिढ़ते नहीं थे लेकिन उनके मन में ऐसा होता था कि 'यह बहुत पूछता रहता है'। क्योंकि 'यह इसके साथ क्यों है? इसे ऐसा क्यों कहा जाता है? इसे ऐसा क्यों कहते हैं?' यानी पूछ-पूछकर उनका दम निकाल देता था।

प्रश्नकर्ता : किस उम्र से पूछते थे दादाजी? बचपन से ही?

दादाश्री : सात साल का था तभी से। इसका क्या और इसका क्या? सिर्फ पूछना, पूछना, और पूछना... जहाँ पर कोई भी बात की, उसके बारे में पूछते रहने की आदत! और फादर से उन लोगों ने कहा था। फादर को लालच दिया था जन्मपत्री लिखने वाले ने कि आपके पुत्र तो ग़ज़ब के पुरुष बनेंगे! और उसमें फिर महाराज ने ऐसा भी कहा कि 'पूछता नर पंडिता'। इस तरह से सब मेल खाने लगा। लेकिन पंडित भी नहीं बने न! और ज्ञानी बन गए!

फादर को छला, उसके किए प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : फादर के प्रति कोई भूल हुई थी?

दादाश्री : हाँ, हमारे फादर से एक ज्योतिषी ने कहा था कि 'आपके घर में एक बहुत बड़े रत्न ने जन्म लिया है। इसके संस्कारों में ज़रा सी भी कमी नहीं रहे वह देखते रहना'। अब फादर तो कितना ध्यान रख सकते थे? मैं उन्हें छलता तो वे कितना देख पाते? मैं सिनेमा-नाटक देखने जाता था, भादरण में। जब मैं नाटक देखने जाता था तब फादर समझते थे कि यह सो गया है क्योंकि पहले सो जाता था फिर उठकर खिड़की से कूदकर निकल जाता था। सिर्फ बा को ही यह पता रहता था। बा मुझसे कहती थीं कि, 'भाई, तू गिर जाएगा। ऐसा मत करना'। मैंने कहा, 'नहीं, वे मुझे डाँटेंगे। मैं तो ऐसा ही करूँगा'। ऐसी बहुत सी शरारतें की थीं।

फादर को छला, बा को नहीं छला। मैं जो कुछ भी करता था, वह सिर्फ बा को बता देता था। मुझे ऐसा डर रहता था कि फादर तो डाँटेंगे। इसलिए उनसे कह देता था कि 'मैं नहीं गया और रात को सो गया था'।

हालांकि मैं नाटक देखकर आया होता था। फिर जब लोग उन्हें कहते थे कि 'आपका बेटा तो नाटक देखने आता है'। तब फिर वे कहते थे कि 'तू कब गया था? तू कब उठा था?' मैंने कहा, 'मैं तो कुछ देर के लिए जाकर वापस आ गया था'।

तो इन सब के लिए बहुत प्रतिक्रमण किए थे। घर में मैंने क्या-क्या किया, यहाँ क्या-क्या किया? फादर के साथ में क्या-क्या दगा किया? वे कहते थे कि 'नाटक आया है, तुझे देखने जाने की ज़रूरत नहीं है'। तब कहता था, 'हाँ, नहीं जाऊँगा'। और नाटक देखकर आकर चुपके से, बा को पहले से ही बता देता था कि मैं आऊँगा तब दरवाज़ा ज़रा खुला रखना। तो वे दरवाज़ा खुला रखती थीं और मैं एकदम से अंदर घुस जाता था। ये सारे गुनाह ही किए थे न!

हमारी उपस्थिति में फादर का देहांत

प्रश्नकर्ता : मूलजीभाई किस उम्र में गए?

दादाश्री : पचास-इक्यावन साल की।

प्रश्नकर्ता : ऐसा? बहुत कम उम्र में चले गए!

दादाश्री : कम उम्र में लेकिन उन दिनों तो इक्यावन साल तक जीना भी बहुत कहा जाता था।

प्रश्नकर्ता : उसके लिए तो बहुत खुशी मनाते थे लोग, वन (पचास साल पूरे करने पर मनाया जाने वाला उत्सव) मनाया, ऐसा करके मनाते थे।

दादाश्री : इक्यावन-वन में आया, कहते थे।

प्रश्नकर्ता : (विक्रम संवत) 1983 में मूलजीभाई गुज़र गए थे, 1983 में यानी आज से साठ साल पहले (संवत 2043, ई.स. 1987)।

दादाश्री : हाँ, 1983 की बाढ़ के समय।

प्रश्नकर्ता : 1983 में बाढ़ आई थी, उस बात को साठ साल हो गए। तो आपके पिताजी गए तब आपकी उम्र कितनी थी?

दादाश्री : मैं बीस साल का था तब फादर गुज़र गए थे। क्या हुआ कि हमारे फादर की तबीयत अच्छी नहीं थी, तब मैं यहाँ कॉन्ट्रैक्ट के काम पर जाता था। इसलिए हमारे बड़े भाई मणिभाई ने मुझसे कहा कि 'तू काम पर रह और मैं फादर की तबीयत पूछकर आता हूँ। मैं ज़रा मिल आता हूँ'। मैंने कहा, 'तो ठीक है, आप जाकर आइए। मैं बाद में आऊँगा'। मेरी इच्छा बहुत थी, अगर कहीं शरीर छोड़ दिया तो? फिर उस दिन मेरे ब्रदर भादरण गए। उन दिनों बोरसद और भादरण के बीच में गाड़ियाँ नहीं चलती थीं, घोड़ागाड़ी मिलती थी और कई बार यों ही चलकर जाना पड़ता था!

उनके जाने के कुछ देर बाद मुझे कुदरती रूप से यों ही विचार आया कि 'चलो न भाई, मैं भी जाऊँ, मैं भी तबीयत पूछकर आता हूँ। ये काम दूसरों को सौंप देता हूँ और फिर मैं भी जाता हूँ'। इसलिए फिर मैं भी पिताजी से मिलने गया। मैंने वह काम बाकी सभी को सौंप दिया और मैं तो चल पड़ा घोड़ागाड़ी में बैठकर।

फिर देखा, मणिभाई तो वापस लौट रहे थे, उन्हें मिलने गए थे वहाँ से और मैं जा रहा था, तब हम आमने-सामने मिले। उन्होंने मुझसे पूछा 'तू आ गया?' मैंने कहा, 'हाँ, मुझे अंदर से ऐसा विचार आया कि जाऊँ, तो मैं सभी को काम सौंपकर आया हूँ'। तब उन्होंने मुझसे कहा, 'अब तू वहाँ घर जा और मैं वापस काम पर जाता हूँ। तू रहना अभी दो-चार दिन। पिताजी की तबीयत नरम है। मैं वहाँ सब कर लूँगा'। तो ब्रदर वापस गए वहाँ पर और मैं 'फादर' के पास आ गया, तो उन्होंने उसी रात जाने की तैयारी कर ली, तब तक वे जा नहीं रहे थे। मैं आ गया तो तैयारी कर ली, वर्ना तब तक तैयारी नहीं कर रहे थे। तब बा ने कहा, 'अच्छा हुआ तू आ गया। आज तो हालत ज़्यादा खराब है'। फिर कुछ देर बाद वे गुज़र गए। रात को ही उन्होंने सफर पूरा कर लिया।

तो मेरे आते ही फादर चल बसे! अत: जिसके कंधों पर जाना हो उसी के कंधों पर चढ़ते हैं। मैं चार ही घंटे पहले आया था बड़ौदा से, जबकि बड़े भाई एक दिन पहले ही आए थे लेकिन जिसके कंधे पर अर्थी जानी होती है, जो हिसाब होता है, वही चुकता होता है।

उन्हें मेरे कंधे पर चढ़कर जाना था, तो उस प्रकार से गए। हमारे ऋणानुबंध खत्म किए। फिर लोग कहते थे कि भाई, इसके कंधे पर ही चढ़कर जाना लिखा था तो इसके कंधे पर चढ़कर गए, मणिभाई के कंधे पर नहीं, लोग ऐसा सब ढूँढ निकालते हैं।

माँ-बाप की सेवा वह प्रत्यक्ष-नकद

प्रश्नकर्ता : आपके पहुँचते ही चार घंटे में ही फादर चले गए, तो उन्होंने आपसे सेवा नहीं ली?

दादाश्री : नहीं, फिर मैंने बा की सेवा की थी। पिताजी के समय मेरी उम्र बीस साल थी, यानी भरपूर जवानी की उम्र थी। हम पिताजी को कंधा देकर ले गए थे, उतनी ही सेवा हुई। फिर हिसाब मिला कि 'अरे, ऐसे तो कितने ही पिताजी हो चुके! अब क्या करेंगे?' तब कहा, 'जो हैं उनकी सेवा कर। जो चले गए, वे गॉन। लेकिन अभी जो हैं, तू उनकी सेवा कर। न हों, तो चिंता मत करना। ऐसे तो बहुत हो चुके हैं। भूल गए वहाँ से फिर से गिनना शुरू करो। माँ-बाप की सेवा, वह प्रत्यक्ष, नकद है। भगवान दिखाई नहीं देते, ये तो दिखाई देते हैं। भगवान कहाँ दिखाई देते हैं जबकि माँ-बाप तो दिखाई देते हैं'।

दैवीय कुटुंब को नमस्कार करते थे गाँव वाले

हमारा परिवार बहुत अच्छा था। मुझे तो हमारे गाँव में दो-तीन लोग कहते थे कि, 'क्या आपके माता-पिता और आपके घर को तो हम नमस्कार करते हैं। कितने *लागणी* (लगाव, भावुकता वाला प्रेम) वाले हैं, किसी का काम करवा दें, ऐसे हैं ये लोग! जिनका केस हाथ में लेते हैं न, उनका पूरा काम कर देते हैं। इतने *लागणी* वाले, दयालु, किसी का भी हड़पते नहीं थे और ये हरहाया नहीं हैं।' हरहाया पशु (आवारा पशु, हर तरफ घूमकर फसल को हानि पहुँचाने वाला) जैसे लोगों ने इकट्ठा किया होता है और वे और भी ज़्यादा इकट्ठा करते हैं। हम इकट्ठा नहीं करते थे। अरे! जितना हमारे नसीब में होगा उतना आएगा।

किसी-किसी जगह पर तो मेरे पैर छूते थे और कहते थे, 'धन्य है आपका परिवार'! कभी भी कोई ऐब नहीं, दाग़ नहीं। एक दाग़ नहीं। वर्ना चोरी है, लुच्चापन यदि ऐसा कुछ हो तो तिरस्कार होता है। नहीं होता?

प्रश्नकर्ता : होता है।

दादाश्री : एक भी ऐब नहीं। मूलजी चाचा के अवसान के समय पैसे नहीं थे फिर भी मणिभाई ने कहा, 'मुझे तो पूरे मुहल्ले को खाना खिलाना है।' इच्छा तो पूरे मुहल्ले की थी और किया भी। पैसे नहीं थे तो उधार लेकर किया। छोड़ा नहीं न! इतना सब, बहुत मज़बूत लोग और पैसे की पेटियाँ नहीं थीं, तिजोरियाँ नहीं थीं। मान क्यों मिलता था? परिवार अच्छा था इसलिए। जो औरों के लिए ही जीते हैं, ऐसे ही सब लोग यहाँ जन्मे। जो लोगों के लिए ही जीते हैं न, वैसे ही सब। मुझे तो गाँव के कितने ही बुज़ुर्ग कहते थे, 'भाई, आपकी तो क्या बात करें? कैसा घर! कितना अच्छा! किसी को दु:ख नहीं (दिया), किसी को त्रास नहीं दिया।' ऐसा था इसलिए पैर छूते थे बुज़ुर्ग! कैसा दैवीय परिवार है! ऐसा सब कहते थे। कोई दु:ख दे गया हो न, तब भी उसे दु:ख नहीं देते थे, ऐसी क्षत्रियता। अच्छा कहलाएगा न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, बहुत अच्छा।

देखने से प्रकट हुए ये गुण

दादाश्री : यानी फैमिली अच्छी थी और मदर बहुत ही संस्कारी, अत्यधिक संस्कारी।

प्रश्नकर्ता : वह आपको विरासत में मिला।

दादाश्री : विरासत इस जगत् में जिसे कहते हैं, वह तो सिर्फ कहने के लिए है, वास्तव में विरासत जैसा कुछ होता नहीं है। उसकी स्पष्टता कुछ और ही है। यों लौकिक में ऐसा कहते हैं कि यह विरासत में मिला है, लेकिन वास्तव में वह करेक्ट (सही) बात नहीं है। इस बात के पीछे बहुत गहरी बातें हैं।

विरासत में यह मिला था लेकिन पूर्व जन्म का मेरा कोई हिसाब रहा होगा न! पूर्व जन्म से, अनंत जन्मों का कुछ लाया होऊँगा न! वह लेकर आया था, इसलिए यह सब प्रकट हुआ।

मैं अपना लेकर आया था इसीलिए तो उनके घर पर जन्म हुआ न! उनकी वजह से ही प्रकट हुए। उनमें देखने से ही प्रकट हुए। उनमें देखा, इसलिए प्रकट हुआ।

मदर का देखकर जाग्रत हुए संस्कार

प्रश्नकर्ता : आपको जो ज्ञान हुआ, उसमें माँ के संस्कारों के साथ-साथ आप अपने भी पूर्व जन्म के उच्च संस्कार लेकर आए होंगे न?

दादाश्री : बहुत उच्च संस्कार होने चाहिए, ऐसा मैं मानता हूँ क्योंकि मुझे बचपन से वैराग्य बरतता था, हर एक बात में और मदर भी उच्च कोटि की मिली थीं। मदर अच्छी मिल गई थीं। पूरी तरह से सभी संस्कार सिर्फ मदर के ही! क्योंकि मेरा किया हुआ तो था ही लेकिन जब मैं यह सब देखता, तभी मुझे यह सब आता न!

प्रश्नकर्ता : और नहीं तो क्या?

दादाश्री : अत: मदर का अनुभव देखने मिला, इसलिए आ गया। ये सारे मदर के संस्कार हैं। इस जन्म के संस्कार हैं लेकिन माल तो मेरा ही है न? संस्कार यानी आपके माध्यम से मेरे माल का जाग्रत होना। मेरे माल को जाग्रत करने के लिए अन्य संस्कारों की भी ज़रूरत थी। कितने ही जन्मों से मैं करता आ रहा था तो इस जन्म में वह टंकी भरकर फूटी। यह सब खुद का ही किया हुआ है न? उन्होंने यह सिखाया, तो पूरी

ज़िंदगी मुझे वैसा ही रहा। यानी ये तो अपने ही संस्कार हैं न! वर्ना क्या कोई माँ ऐसा कहती है कि तू मार खाकर आना? ये अपने संस्कार हैं और मूलत: तो मैं अपने सभी संयोग लेकर आया था। परंतु नियम ऐसा है कि जैसे खुद के सभी संयोग होते हैं न, वैसा ही पूरा माहौल मिलता है।

प्रश्नकर्ता : आप मूल रूप से, शुरू से ही यह माल लेकर आए थे?

दादाश्री : हाँ। मैं लेकर आया हूँ और इतना सुंदर माल है। देखना, उससे लोगों का काम निकल जाएगा।

मूल वैज्ञानिक स्वभाव

मेरा वैज्ञानिक स्वभाव है, शुरू से ही। जितना (शास्त्र) पढ़ा उस पर से मैं विज्ञान बताता हूँ। विज्ञान अर्थात् यह मेरे पाताल का पानी है। इसमें से (शास्त्र में से) लिया, लेकिन निकलता है वह पाताल का पानी!

वैज्ञानिक अर्थात् खुद का ही सब कुछ (सिद्धांत) बनाना। सामने वाला बात करे उससे पहले ही आगे का सब कुछ देख लेना, सामने वाले को रास्ते पर ला देना।

मुझे बचपन से ही आदत थी कि मुझसे कोई ज्ञान की बातें करता तब मैं उसे विज्ञान की तरफ ले जाता था। वैज्ञानिक स्वभाव तो मेरा बचपन से ही था। 'वैज्ञानिक' अर्थात् मूल शब्द मिलने के बाद मैं न जाने कहाँ तक पहुँच जाता था! बात ज्ञान की चल रही होती थी, तो मैं उसमें से न जाने कुछ अलग ही खोज कर देता था! लोग विज्ञान की बात सुनते हैं तो उसे ज्ञान में ले जाते हैं और मैं ज्ञान की बात को विज्ञान में ले जाता हूँ। विज्ञान यानी कि ऐसी-ऐसी बातें जो शास्त्रों में नहीं मिलतीं लेकिन सभी प्रकार से स्पष्टता हो जाए।

मेरा बिलोना परिणामवादी था। 'आज बिलोना बिलोया, उसमें क्या आया?' ऐसा देखने की आदत थी। बिलोता ज़रूर था लेकिन देखने के बाद कोई मक्खन नहीं मिलता था तो मैं छोड़ देता था। मैं बिलोता ज़रूर था लेकिन मेरा परिणामवादी था। यह देख लेता था कि परिणाम स्वरूप मुझे क्या प्राप्त हुआ। यानी मैं भी बिलोता था, लेकिन बिलोने पर ही मुझे यह सब मिला न! बिलोते-बिलोते (यह विज्ञान) मिला है न!

बचपन से ही मेरा एक स्वभाव था कि कोई भी कार्य करता था तो उसका मुझे परिणाम दिखाई दिए बगैर नहीं रहता था। सारे बच्चे चोरी करते हों तो कभी-कभी मेरा मन ललचाता ज़रूर था कि, ऐसा करना चाहिए, लेकिन तुरंत ही मुझे परिणाम स्वरूप भय ही दिखाई देता था। यानी शुरू से ही परिणाम दिखाई देते थे इसलिए कहीं भी चिपकने नहीं दिया। इसका परिणाम क्या आएगा, वह मुझे साथ में रहता ही था, हर बात में।

हमें पसंद था सीधा रास्ता

मैंने बचपन से ही, नौ साल का था तभी से नियम बनाया था कि लोग जिस रास्ते पर चलते हैं उस रास्ते पर, वह रास्ता सीधा हो तो चलना है और रास्ता बहुत टेढ़ा हो तो बीच में से नया रास्ता बनाना है। सभी घूमने जाते थे, तो जब मोड़ आता था तब मैं खेत में से चला जाता था। जहाँ से सब लोग जाते थे, वहाँ से नहीं जाता था। सभी कहते थे कि, 'आप टेढ़े हो'। तब मैं कहता था कि, 'मैं तो पहले से ही टेढ़ा हूँ'। उस रास्ते का क्या करना है? लोग तो, टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता बना हो तो टेढ़े चलकर जाते हैं, एक मील जाना हो तो तीन मील घूमकर पहुँचते हैं। मैं तो समझ जाता था कि यह टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता बनाया है। लोग उसी रास्ते पर चलते रहते हैं, हमें यह नया, सीधा रास्ता बना देना है।

इस तरह लोगों की सभी बातें उल्टी होती थीं, उनमें सीधी बात क्या है वह पहचानना तो पड़े न?

बचपन से मुझे अलग मार्ग मिल गया था, शुरू से ही। बचपन से ही मार्ग बदलता था, मैं लोगों के आधार पर नहीं चलता था। जहाँ कोई टोली जा रही होती थी न, तो मैं उस टोली में नहीं चलता था। मैं देखकर जाँच करता था कि यह टोली किस तरफ ले जा रही है? यह रास्ता तो इस तरह घूमकर वापस उस तरफ जा रहा है। उस पूरे रास्ते का हिसाब लगाते थे तो एक के बजाय तीन गुना होता था, तो यह आधा सर्किल डेढ़ गुना होता था। तो डेढ़ गुना रास्ते पर जाकर मार खाए या सीधे? तो मैं सीधा चलता था, लोगों के रास्ते पर नहीं चला, शुरू से ही। लोगों के रास्ते पर कोई काम नहीं था। मेरा काम लोगों से कुछ अलग था, तरीका भी अलग था, रस्म भी अलग थी, सभी कुछ अलग। यानी मेरी शुरू से ऐसी आदत थी। इसलिए मुझे लोग क्या कहते थे, मैं बताऊँ?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : कहते थे, 'सीधा जा रहा है?' मैं कहता था, 'हाँ'। तब वे कहते थे, 'तू हमसे पहले कैसे पहुँच गया? सीधे चलकर आया?' मैंने कहा, 'हाँ, 'सीधे चलकर आया हूँ। तो क्या आपकी टोली की तरह मंजीरा बजाकर आपके साथ घूमूँ? मैं अपने तरीके से दूसरा रास्ता ढूँढ लेता था। मुझे यह सब रास नहीं आता था।

तय किए रास्ते पर चलकर, खोज़ा अक्रम विज्ञान

कुदरत का नियम क्या है? पड़ोस में कोई न हो और अकेला ही हो न, तो उसे कुछ सुझ देने वाला अंदर है लेकिन दूसरे चार लोग हों तो कौन सुझाएगा? अकेला हो तो सूझ पड़ती है। यानी यह जगत् अकेला नहीं होता है, उसकी ही झंझट है न! जबकि मैं अकेला घूमा हूँ क्योंकि बचपन से ही मेरा स्वभाव ऐसा था कि लोगों के रास्ते पर नहीं चलना है, खुद के सोचे हुए रास्ते पर चलना है। उससे मार भी पड़ी कितनी ही बार, काँटे भी खाए हैं लेकिन अंत में इसी रास्ते पर जाना है यह तय किया था, तो इस रास्ते पर हमें रास आ गया। कई जन्मों तक मार पड़ी होगी, लेकिन अंत में यह ढूँढ निकाला, वह बात पक्की है।

बचपन से ही हम में यह विज्ञान घुस गया था! इसीलिए आराम और शांति से ही रहे। दूसरी बाह्य बातें नहीं आती थीं अंत में अक्रम विज्ञान मिल गया बहुत ही अच्छा!

जय सच्चिदानंद

आत्मज्ञानी पूज्य दीपकभाई के सानिध्य में अडालज में सत्संग कार्यक्रम

9 अगस्त (शनि) - **सत्संग** और **10 अगस्त** (रवि) - **ज्ञानविधि**
20 से 27 अगस्त (बुध से बुध) - **आप्तवाणी 14 भाग-4 पर सत्संग पारायण**
28 अगस्त (गुरु) - **पूज्यश्री के दर्शन का कार्यक्रम** (गुरुपूर्णिमा के दर्शन)

त्रिमंदिरो के संपर्क : अडालज : 9328661166-77, **राजकोट :** 9924343478, **भूज :** 9924345588, **मुंबई :** 9323528901, **अंजार :** 9924346622, **मोरबी :** 9924341188, **सुरेन्द्रनगर :** 9737048322, **अमरेली :** 9924344460, **वडोदरा :** 9574001557, **गोधरा :** 9723707738, **जामनगर :** 9924343687, **भावनगर :** 9313882288, **अहमदाबाद (दादा दर्शन) :** 9574001445, **वडोदरा (दादा मंदिर) :** 9924343335, **दिल्ली :** 9810098564, **बैंगलूर :** 9590979099, **कोलकता :** 9830080820 **यु.एस.ए.-केनेडा:** +1 877-505-3232, **यु.के.:** +44 330-111-3232, **ऑस्ट्रेलिया:** +61 402179706

नवसारी : सत्संग - ज्ञानविधि : ता. 20 से 22 मई 2025

हरिद्वार : हिन्दी शिविर : ता. 28 मई से ता. 1 जून 2025

जुलाई 2025
वर्ष-20 अंक-9
अखंड क्रमांक - 237

दादावाणी

Date Of Publication On 15th Of Every Month
RNI No. GUJHIN/2005/17258
Reg. No. G-GNR-348/2024-2026
Valid up to 31-12-2026
Licensed to Post Without Pre-payment
No. PMG/NG/036/2024-2026
Valid up to 31-12-2026
Posted at Adalaj Post Office
on 15th of every month.

परिणामलक्षी स्वभाव के कारण मिला यह विज्ञान

मेरा बचपन से ही एक स्वभाव था कि कोई भी कार्य करता था तो उसका मुझे परिणाम दिखाई दिए बगैर नहीं रहता था। सारे बच्चे चोरी करते हों तो कभी-कभी मेरा मन ललचाता ज़रूर था कि, ऐसा करना चाहिए, लेकिन तुरंत ही मुझे परिणाम स्वरूप भय ही दिखाई देता था। यानी शुरू से ही परिणाम दिखाई देते थे इसलिए कहीं भी चिपकने नहीं दिया। इसका परिणाम क्या आएगा, वह मुझे साथ में रहता ही था, हर बात में। मेरा बिलोना परिणामवादी था। 'आज बिलोना बिलोया, उसमें क्या आया?' ऐसा देखने की आदत थी। बिलोता ज़रूर था लेकिन देखने के बाद कोई मक्खन नहीं मिलता था तो मैं छोड़ देता था। परिणाम स्वरूप मुझे क्या प्राप्त हुआ, वह देख लेता था। यानी मैं भी बिलोता था, लेकिन बिलोने पर ही मुझे यह सब मिला न! बिलोते-बिलोते (यह विज्ञान) मिला है न!

- दादाश्री

Printed and Published by Dimple Mehta on behalf of Mahavideh Foundation - Owner. Printed at Amba Multiprint, Opp. H B Kapadiya New High School, Chhatral - Pratappura Road, At - Chhatral, Tal : Kalol, Dist. Gandhinagar – 382729.